# नवधा भक्ति



जयदयाल गोयन्दका

# नवधा भक्ति

जयदयाल गोयन्दका

न० भ० १-२—

प्रकाशक—गोविन्दभवन-कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० १९९४ से २०४३ तक १,९४,२५०
सं० २०४६ इक्कीसवाँ संस्करण १०,०००
कुल २,०४,२५०

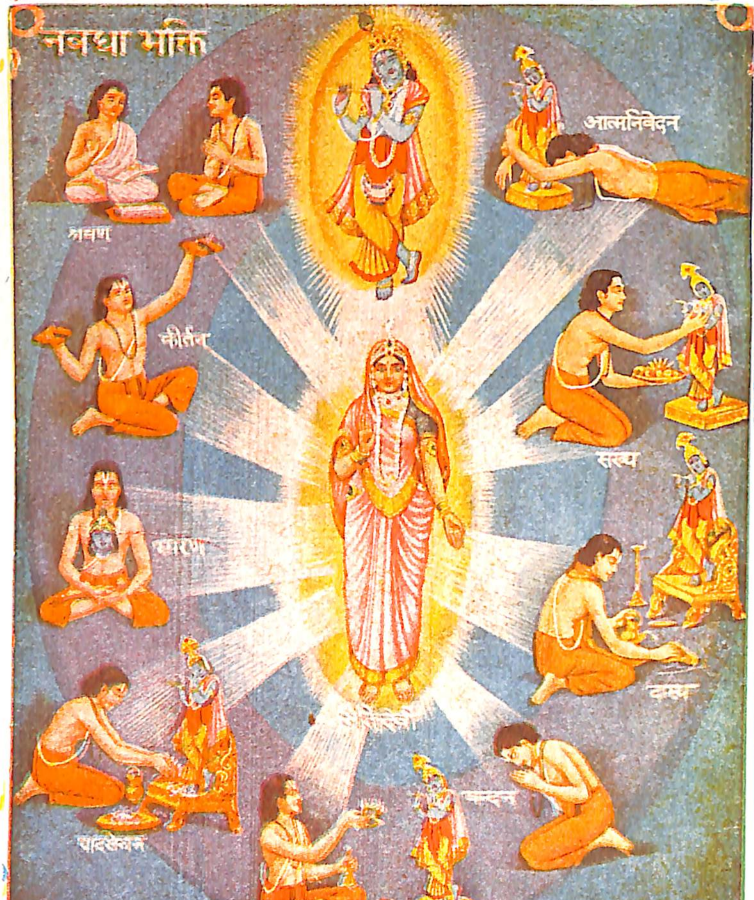
## विषय-सूची



मूल्य पचहत्तर पैसे

मुद्रक—गीताप्रेस, गोरखपुर

*


नवधा भक्ति
आत्मनिवेदन
श्रवण
कीर्तन
सख्य
दास्य
पादसेवन
वन्दन
अर्चन

॥ श्रीहरिः ॥

# नवधा भक्ति

भक्ति ही एक ऐसा साधन है, जिसको सभी सुगमतासे कर सकते हैं और जिसमें सभी मनुष्योंका अधिकार है। इस कलि-कालमें तो भक्तिके समान आत्मोद्धारके लिये दूसरा कोई सुगम उपाय है ही नहीं; क्योंकि ज्ञान, योग, तप, याग आदि इस समय सिद्ध होने बहुत ही कठिन हैं और इस समय इनके उपयुक्त सहायक सामग्री आदि साधन भी मिलने कठिन हैं, इसलिये मनुष्यको कटिबद्ध होकर केवल ईश्वरकी भक्तिका ही साधन करनेके लिये तत्पर होना चाहिये। विचार करके देखा जाय तो संसारमें धर्मको माननेवाले जितने लोग हैं, उनमें अधिकांश ईश्वर-भक्तिको ही पसंद करते हैं। अब हमको यह विचार करना चाहिये कि ईश्वर क्या है और उसकी भक्ति क्या है? जो सबके शासन करनेवाले, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी हैं, न्याय और सदाचार जिनका कानून है, जो सबके साक्षी और सबको शिक्षा, बुद्धि और ज्ञान देनेवाले हैं तथा जो तीनों गुणोंसे अतीत होते हुए भी लीलामात्रसे गुणोंके भोक्ता हैं, जिनकी भक्तिसे मनुष्य सम्पूर्ण दुर्गुण, दुराचार और दुःखोंसे विमुक्त होकर परम पवित्र बन जाता है, जो अव्यक्त होकर भी जीवोंपर दया करके जीवोंके कल्याण एवं धर्मके प्रचार तथा भक्तोंको आश्रय देनेके लिये अपनी लीलासे समय-समयपर देव, मनुष्य आदि सभी रूपोंमें व्यक्त होते हैं अर्थात् साकार-रूपसे प्रत्यक्ष प्रकट होकर भक्तजनोंको उनके इच्छानुसार दर्शन देकर आह्लादित करते हैं और जो सत्ययुगमें श्रीहरिके रूपमें, त्रेतायुगमें

श्रीरामरूपमें, द्वापरयुगमें श्रीकृष्णरूपमें प्रकट हुए थे, उन प्रेममय नित्य अविनाशी, विज्ञानानन्दघन, सर्वव्यापी हरिको ईश्वर समझना चाहिये ।*

अब भक्ति किसका नाम है—इस विषयमें विचार करना चाहिये । महर्षि शाण्डिल्यने कहा है—'सा परानुरक्तिरीश्वरे' 'ईश्वरमें परम अनुराग यानी परम प्रेम ही भक्ति है ।'

देवर्षि नारदने भी भक्तिसूत्रमें कहा है—'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा' ॥२॥ 'उस परमेश्वरमें अतिशय प्रेमरूपता ही भक्ति है ।' 'अमृतस्वरूपा च' ॥३॥ 'और वह अमृतरूप है ।'

इस प्रकार और भी बहुत-से वचन मिलते हैं । इनसे यही मालूम होता है कि ईश्वरमें जो परम प्रेम है, वही अमृत है, वही असली भक्ति है । यदि कहें कि व्याकरणसे 'भक्ति' शब्दका अर्थ सेवा होता है; क्योंकि 'भक्ति' शब्द 'भज् सेवायाम्' धातुसे बनता है, तो यह कहना भी ठीक ही है । प्रेम सेवाका परिणाम है और भक्तिके साधनकी अन्तिम सीमा है । जैसे वृक्षकी पूर्णता और गौरव फल आनेपर ही है, इसी प्रकार भक्तिकी पूर्णता और गौरव भगवान्‌में परम प्रेम होनेमें ही है । प्रेम ही उसकी पराकाष्ठा है और प्रेमके ही लिये सेवा की जाती है । इसलिये वास्तवमें अनन्य प्रेमका होना ही भक्ति है ।

यद्यपि ईश्वरकी भक्तिमें सभी जीवोंका अधिकार होना ही

---

* इस विषयमें विशेष जानना हो तो 'भगवान् क्या है ?' इस पुस्तिकाको मँगाकर देख सकते हैं । यह गीताप्रेससे छपी है ।

न्याययुक्त है, क्योंकि हनूमान्, जाम्बवन्त, गजेन्द्र, गरुड़, काकभुशुण्डि और जटायु आदि पशु-पक्षी भी भगवान्की भक्तिके प्रतापसे परम-पदको प्राप्त हुए हैं, परंतु मनुष्यातिरिक्त पशु-पक्षी आदिमें ज्ञान और साधनका अभाव होनेके कारण वे ईश्वर-भक्ति कर नहीं पाते—इसलिये शास्त्रकार ईश्वर-भक्तिमें मनुष्योंका अधिकार बतलाते हैं।

ईश्वरकी भक्तिमें आयु और रूपका तो कुछ भी मूल्य नहीं है। विद्या, धन, जाति और बल—ये भी मुख्य नहीं हैं एवं सदाचार और सद्गुणकी तरफ भी भगवान् इतना ख्याल नहीं करते—वे केवल प्रेमको ही देखते हैं। किसी कविने कहा भी है—

**व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का**
**का जातिर्विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषम्।**
**कुब्जायाः कमनीयरूपमधिकं किं तत्सुदाम्नो धनं**
**भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः॥**

'व्याधका कौन-सा ( अच्छा ) आचरण था? ध्रुवकी आयु ही क्या थी? गजेन्द्रके पास कौन-सी विद्या थी? विदुरकी कौन उत्तम जाति थी? यादवपति उग्रसेनका कौन-सा पुरुषार्थ था? कुब्जाका ऐसा क्या विशेष सुन्दर रूप था? सुदामाके पास कौन-सा धन था? भक्तिप्रिय माधव तो केवल भक्तिसे ही संतुष्ट होते हैं, गुणोंसे नहीं।'

सदाचार और सद्गुण तो उस भक्तमें भक्तिके प्रभावसे अनायास ही आ जाते हैं, इसलिये ईश्वरकी भक्तिमें सदाचार और सद्गुणोंकी भी प्रधानता नहीं है, किन्तु इससे यह नहीं समझ लेना

चाहिये कि ईश्वरकी भक्तिमें सदाचार और सद्गुणोंकी आवश्यकता ही नहीं है। जैसे बीमार आदमीके लिये रोगकी निवृत्तिमें औषधका सेवन प्रधान और साथ-ही-साथ पथ्यकी भी आवश्यकता रहती है, इसी प्रकार जन्म-मरणरूपी भवरोगकी निवृत्तिके लिये ईश्वरकी भक्ति परमौषध है और सद्गुण तथा सदाचारका सेवन पथ्य है। लौकिक रोगकी निवृत्तिके लिये रोगी औषधका सेवन करता हुआ यदि पथ्यकी ओर ध्यान नहीं देता तो उसके रोगकी निवृत्ति प्रायः नहीं होती, किन्तु सदाचार और सद्गुणरूपी पथ्यकी कमी रहनेपर भी भक्ति-रूपी औषधके सेवनसे भवरोगकी निवृत्ति हो जाती है; क्योंकि भक्ति-रूपी औषध पथ्यका काम भी कर लेती है। इतना ही नहीं, कुपथ्य-सेवनसे उत्पन्न हुए नाना प्रकारके दुर्गुण और विघ्नरूप दोषोंका नाश एवं सदाचार-सद्गुणरूप पथ्यका उत्पादन भी ईश्वर-भक्ति कर देती है तथा सदाके लिये रोगकी जड़ उखाड़ डालती है। अतः ईश्वर-भक्ति परमौषध है।

भक्तिके प्रधान दो भेद हैं—एक साधनरूप, जिसको वैध और नवधाके नामसे भी कहा है और दूसरा साध्यरूप, जिसको प्रेमा-प्रेमलक्षणा आदि नामोंसे कहा है। इनमें सेवा साधनरूप है और प्रेम साध्य है। अब यह विचार करना चाहिये कि सेवा किसका नाम है। इसके उत्तरमें यही कहा जा सकता है कि स्वामी जिससे संतुष्ट हो उस प्रकारके भावसे भावित होकर उसकी आज्ञाके अनुसार आचरण करनेका नाम सेवा है। शास्त्रोंमें उनके अनेक प्रकारके लक्षण बतलाये गये हैं।

तुलसीकृत रामायणमें शबरीके प्रति भगवान् श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं—

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥
गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान॥

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥
छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा॥
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा॥
आठवँ जथा लाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा॥
नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना॥

तथा श्रीमद्भागवतमें भी प्रह्लादजीने कहा है—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
(७।५।२३)

'भगवान् विष्णुके नाम, रूप, गुण और प्रभावादिका श्रवण, कीर्तन और स्मरण तथा भगवान्‌की चरण-सेवा, पूजन और वन्दन एवं भगवान्‌में दासभाव, सखाभाव और अपनेको समर्पण कर देना—यह नौ प्रकारकी भक्ति है।'

इस प्रकार शास्त्रोंमें भक्तिके भिन्न-भिन्न प्रकारसे अनेक लक्षण बतलाये गये हैं, किन्तु विचार करनेपर सिद्धान्तमें कोई भेद नहीं है। तात्पर्य सबका प्रायः एक ही है कि स्वामी जिस भाव और आचरणसे संतुष्ट हो, उसी प्रकारके भावोंसे भावित होकर उनकी आज्ञाके अनुकूल आचरण करना ही सेवा यानी भक्ति है।

अब श्रीमद्भागवतमें प्रह्लादके द्वारा बतलायी हुई नवधा भक्तिके विषयमें उसके स्वरूप, विधि, प्रयोजन, हेतु, फल और उदाहरणका दिग्दर्शन कराया जाता है। इस उपर्युक्त नवधा भक्तिमें एकका भी अच्छी प्रकार अनुष्ठान करनेपर मनुष्य परमपदको प्राप्त हो जाता है, फिर जो नवोंका अच्छी प्रकारसे अनुष्ठान करनेवाला है, उसके कल्याणमें तो कहना ही क्या है।

## श्रवण

भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंद्वारा कथित भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, लीला, तत्त्व और रहस्यभरी अमृतमयी कथाओंका श्रद्धा और प्रेमपूर्वक श्रवण करना एवं उन अमृतमयी कथाओंका श्रवण करके वीणाके सुननेसे जैसे हरिण मुग्ध हो जाता है, वैसे ही प्रेममें मुग्ध हो जाना श्रवण-भक्तिका स्वरूप है।

उपर्युक्त श्रवण-भक्तिकी प्राप्तिके लिये श्रद्धा और प्रेमपूर्वक महापुरुषोंको साष्टाङ्ग प्रणाम, उनकी सेवा और उनसे नित्य निष्कपट-भावसे प्रश्न करना और उनके बतलाये हुए मार्गके अनुसार आचरण करनेके लिये तत्परतासे चेष्टा करना—यह श्रवणभक्तिको प्राप्त करनेकी विधि है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

(४। ३४)

'हे अर्जुन ! तत्त्वको जाननेवाले ज्ञानी पुरुषोंसे भली प्रकार दण्डवत्-प्रणाम तथा सेवा और निष्कपटभावसे किये हुए प्रश्नद्वारा उस ज्ञानको जान, वे मर्मको जाननेवाले ज्ञानीजन तुझे उस ज्ञानका उपदेश करेंगे।'

महापुरुषोंके द्वारा वर्णित उपर्युक्त श्रवण-भक्तिको प्राप्त करके प्रभुमें अनन्य प्रेम होनेके लिये प्रभुके भक्तोंमें उसका प्रचार करना —यह उसका प्रयोजन है।

यह श्रवण-भक्ति महापुरुषोंके सङ्ग बिना प्राप्त होनी कठिन है। गोस्वामी तुलसीदासजीने भी कहा है—

बिनु सतसंग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥

किंतु महापुरुषोंके सङ्गके अभावमें उच्च श्रेणीके साधकोंका सङ्ग एवं महापुरुषविरचित ग्रन्थोंका अवलोकन करना भी सत्सङ्गके ही समान है।

सत्सङ्ग न होनेसे विषयोंका सङ्ग तो स्वाभाविक होता ही है! उससे मनुष्यका पतन हो जाता है और सत्सङ्गसे प्रत्यक्ष परम लाभ होता है, क्योंकि मनुष्यके जैसा-जैसा सङ्ग होता है, उस सङ्गके अनुसार ही उसपर वैसा-वैसा प्रभाव पड़ता है और श्रवण-भक्ति भी सत्सङ्गसे ही मिलती है; क्योंकि सत्सङ्ग ही श्रवण-भक्तिका हेतु है तथा सत्पुरुषोंके दर्शन, भाषण, स्पर्श, चिन्तन और सङ्गसे पापी पुरुष भी परम पवित्र बन जाता है। महापुरुषोंकी कृपाके बिना कोई भी परमपदको प्राप्त नहीं हो सकता।

श्रीमद्भागवतमें राजा रहूगणके प्रति महात्मा जडभरत कहते हैं कि—

रहूगणैतत्तपसा न याति
न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा ।
न च्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यै-
र्विना महत्पादरजोऽभिषेकम् ॥
( ५ । १२ । १२ )

'हे रहूगण ! महापुरुषोंके चरणोंकी धूलिमें स्नान किये बिना केवल तप, यज्ञ, दान, गृहस्थ-धर्मपालन और वेदाध्ययनसे तथा जल, अग्नि और सूर्यकी उपासनासे वह परमतत्त्वका ज्ञान नहीं प्राप्त होता ।'

अतएव इससे यही सिद्ध होता है कि सारे कार्योंकी सिद्धि महापुरुषोंके सङ्गसे ही होती है । श्रीमद्भागवतमें भगवान् उद्धवके प्रति कहते हैं कि—

यथोपश्रयमाणस्य भगवन्तं विभावसुम् ।
शीतं भयं तमोऽप्येति साधून् संसेवतस्तथा ॥
अन्नं हि प्राणिनां प्राण आर्तानां शरणं त्वहम् ।
धर्मो वित्तं नृणां प्रेत्य सन्तोऽर्वाग् बिभ्यतोऽरणम् ॥
( ११ । २६ । ३१, ३३ )

'हे उद्धव ! जिस प्रकार भगवान् अग्निदेवका आश्रय लेनेपर शीत, भय और अन्धकारका नाश हो जाता है, उसी प्रकार संत-महात्माओंके सेवनसे सम्पूर्ण पापरूपी शीत, जन्म-मृत्युरूपी भय और अज्ञानरूपी अन्धकारका नाश हो जाता है ।'

'जैसे प्राणियोंका जीवन अन्न है और दुखी पुरुषोंका आश्रय मैं हूँ तथा मरनेपर मनुष्योंका धर्म ही धन है, वैसे ही जन्म-मरणसे भयभीत हुए व्याकुल पुरुषोंके लिये संत-महात्माजन परमाश्रय हैं।'

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा॥
व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः।
यथावरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम्॥
(११।११।१-२)

'जैसे सम्पूर्ण आसक्तियोंका नाश करनेवाला सत्पुरुषोंका सङ्ग मुझको अवरुद्ध कर सकता है अर्थात् प्रेम-पाशसे बाँध सकता है, वैसे योगसांख्य, धर्मपालन, स्वाध्याय, तप, त्याग, यज्ञ, कूप-तड़ागादिका निर्माण, दान तथा व्रत, पूजा, वेदाध्ययन, तीर्थाटन, यम-नियमोंका पालन—ये कोई भी नहीं बाँध सकते अर्थात् इनके द्वारा मैं वशमें नहीं आ सकता।'

महापुरुषोंका सङ्ग दुर्लभ, अगम्य और अमोघ है। इसलिये भगवत्प्राप्तिके इच्छुक पुरुषोंको उन सत्पुरुषोंका सङ्ग अवश्यमेव करना चाहिये। देवर्षि नारदजी भी कहते हैं—

'महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च' (ना० सूत्र ३९)

'महापुरुषोंका सङ्ग दुर्लभ, अगम्य और अमोघ है।'

अतः—

'तदेव साध्यताम्, तदेव साध्यताम्।' (ना० सूत्र ४२)

'उस सत्सङ्गकी ही साधना करो—सत्सङ्गकी ही साधना करो अर्थात् संत-महापुरुषोंका सङ्ग, सेवा और आज्ञाका पालन करो।'

सत्पुरुषोंद्वारा प्राप्त हुई इस प्रकारकी केवल श्रवण-भक्तिसे भी मनुष्य परमपदको प्राप्त कर सकता है—यह उसका फल है। भगवान्‌ने श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है कि—

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥
(१३। २५)

'दूसरे जो मन्दबुद्धिवाले पुरुष हैं, वे स्वयं इस प्रकार न जानते हुए दूसरोंसे अर्थात् तत्त्वके जाननेवाले पुरुषोंसे सुनकर ही उपासना करते हैं अर्थात् उन पुरुषोंके कहनेके अनुसार ही श्रद्धासहित तत्पर हुए साधन करते हैं और वे सुननेके परायण हुए पुरुष भी मृत्युरूप संसारसागरको निःसंदेह तर जाते हैं।'

नारदजीने भी श्रीमद्भागवतमाहात्म्यमें सनकादिके प्रति कहा है—

श्रवणं सर्वधर्मेभ्यो वरं मन्ये तपोधनाः।
वैकुण्ठस्थो यतः कृष्णः श्रवणाद् यस्य लभ्यते॥
(६। ७६)

'हे तपोधनो! मैं भगवान्‌के गुणानुवादोंके श्रवणको सब धर्मोंसे श्रेष्ठ मानता हूँ; क्योंकि भगवान्‌के गुणानुवाद सुननेसे वैकुण्ठ-स्थित भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है।'

केवल श्रवण-भक्तिसे भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। इसके लिये शास्त्रोंमें बहुत-से प्रमाण भी मिलते हैं तथा इतिहास और पुराणोंमें बहुत-से उदाहरण भी मिलते हैं। जैसे राजा परीक्षित् भागवतको सुननेसे ही परमपदको प्राप्त हो गये। श्रीमद्भागवत-माहात्म्यमें लिखा है—

असारे संसारे विषयविषसङ्गाकुलधियः
क्षणार्द्धं क्षेमार्थं पिबत शुकगाथातुलसुधाम् ।
किमर्थं व्यर्थं भो व्रजत कुपथे कुत्सितकथे
परीक्षित्साक्षी यच्छ्रवणगतमुक्त्युक्तिकथने ॥
( ६ । १०० )

'हे विषयरूप विषके संसर्गसे व्याकुल बुद्धिवाले पुरुषो ! किसलिये कुत्सित वार्तारूप कुमार्गमें व्यर्थ घूम रहे हो ? इस असार संसारमें कल्याणार्थ ( कम-से-कम ) आधे क्षणके लिये तो शुकदेवजीके मुखसे निकली हुई भागवत-कथारूप अनुपम अमृतका पान करो । श्रवणसे मुक्ति हो जाती है—इस कथनके लिये परीक्षित् साक्षी ( प्रमाण ) हैं ।'

धुन्धुकारी-जैसा पापी भी केवल भगवान्‌के गुणानुवादोंके सुननेके प्रभावसे तर गया तथा शौनकादि बहुत-से ऋषि भी पुराण और इतिहासके श्रवणमें ही अपने समयको व्यतीत किया करते थे—वे कभी भी नहीं अघाते थे ।

इस मनुष्य-जीवनके लिये और कोई भी इससे बढ़कर आनन्ददायक श्रवणीय विषय नहीं है और यह महापुरुषोंके सङ्गसे ही प्राप्त होता है । इसलिये महापुरुषोंके सङ्गके समान आनन्ददायक लाभप्रद संसारमें कोई भी पदार्थ मनुष्योंके लिये नहीं है । श्रीमद्भागवतमें सूतजी कहते हैं—

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥
( १ । १८ । १३ )

'भगवत्सङ्गी अर्थात् नित्य भगवान्‌के साथ रहनेवाले अनन्यप्रेमी भक्तोंके निमेषमात्रके भी सङ्गके साथ हम स्वर्ग तथा मोक्षकी भी समानता नहीं कर सकते, फिर मनुष्योंके इच्छित पदार्थोंकी तो बात ही क्या है ?'

अतएव अपना सारा जीवन महापुरुषोंके सङ्गमें रहते हुए ही भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, प्रेम, प्रभाव, रहस्य और तत्त्वकी अमृतमयी कथाओंको निरन्तर सुननेमें लगाना चाहिये और उन्हें सुन-सुनकर प्रेम और आनन्दमें मुग्ध होते हुए अपने मनुष्य-जीवनको सफल बनाना चाहिये ।

## कीर्तन

भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, चरित्र, तत्त्व और रहस्यका श्रद्धा और प्रेमपूर्वक उच्चारण करते-करते शरीरमें रोमाञ्च, कण्ठावरोध, अश्रुपात, हृदयकी प्रफुल्लता, मुग्धता आदिका होना कीर्तन-भक्तिका स्वरूप है ।

कथा-व्याख्यानादिके द्वारा भक्तोंके सामने भगवान्‌के प्रेम-प्रभाव-का कथन करना, एकान्तमें अथवा बहुतोंके साथ मिलकर भगवान्‌को सम्मुख समझते हुए उनके नामका उपांशु जप एवं ऊँचे स्वरसे कीर्तन करना, भगवान्‌के गुण, प्रभाव और चरित्र आदिका श्रद्धा और प्रेमपूर्वक धीरे-धीरे या जोरसे खड़े या बैठे रहकर, वाद्य-नृत्यके सहित अथवा बिना वाद्य-नृत्यके उच्चारण करना तथा दिव्य स्तोत्र एवं पदोंके द्वारा भगवान्‌की स्तुति-प्रार्थना करना, यही उपर्युक्त भक्तिको प्राप्त करनेका प्रकार है । किंतु ये सब क्रियाएँ

नामके दस अपराधोंको बचाते हुए* दम्भरहित एवं शुद्ध भावनासे स्वाभाविक होनी चाहिये ।

उपर्युक्त कीर्तन-भक्तिको प्राप्त करके सबको भगवान्‌में अनन्य प्रेम होकर उसकी प्राप्ति हो जाय, इस उद्देश्यसे संसारमें इसका प्रचार करना यह इसका प्रयोजन है ।

कीर्तन-भक्ति भी ईश्वर एवं महापुरुषोंकी कृपासे ही प्राप्त होती है । इसलिये इस विषयमें उनकी कृपा ही हेतु है, क्योंकि भगवान्‌के भक्तोंके द्वारा भगवान्‌के प्रेम, प्रभाव, तत्त्व और रहस्यकी बातोंको सुननेसे एवं शास्त्रोंको पढ़नेसे भगवान्‌में श्रद्धा होती है और तब मनुष्य उपर्युक्त भक्तिको प्राप्त कर सकता है । अतः भगवान् और उनके भक्तोंकी दया प्राप्त करनेके लिये उनकी आज्ञाका पालन करना चाहिये ।

इस प्रकारकी केवल कीर्तन-भक्तिसे भी मनुष्य परमात्माकी दयासे उसमें अनन्य प्रेम करके उसे प्राप्त कर सकता है । गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

---

* सन्निन्दासति नामवैभवकथा श्रीशेषयोर्भेदधी-
रश्रद्धा श्रुतिशास्त्रदैशिकगिरां नाम्न्यर्थवादभ्रमः ।
नामास्तीति निषिद्धवृत्तिविहितत्यागो हि धर्मान्तरैः
साम्यं नाम्नि जपे शिवस्य च हरेर्नामापराधा दश ॥

सत्पुरुषोंकी निन्दा, अश्रद्धालुओंमें नामकी महिमा कहना, विष्णु और शिव-में भेदबुद्धि, वेद-शास्त्र और गुरुकी वाणीमें अविश्वास, हरिनाममें अर्थवादका भ्रम अर्थात् केवल स्तुतिमात्र हैं ऐसी मान्यता, नामके बलसे विहितका त्याग और निषिद्धका आचरण, अन्य धर्मोंकी तुलना यानी शास्त्रविहित कर्मोंसे नामकी तुलना—ये सब भगवान् शिव और विष्णुके नामजपमें नामके दस अपराध हैं ।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥
(९ । ३०-३१)

'यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भावसे मेरा भक्त हुआ मेरेको निरन्तर भजता है, वह साधु ही मानने योग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है, अर्थात् उसने भली प्रकार निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है। इसलिये वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है । हे अर्जुन ! तू निश्चय-पूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता ।'

इतना ही नहीं, इस कीर्तन-भक्तिका प्रचारक तो भगवान्‌को सबसे बढ़कर प्रिय है । भगवान्‌ने गीतामें स्वयं कहा है—

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥
न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥
(१८ । ६८-६९)

'जो पुरुष मेरेमें परम प्रेम करके इस परम रहस्ययुक्त गीता-शास्त्रको मेरे भक्तोंमें कहेगा अर्थात् निष्काम भावसे प्रेमपूर्वक मेरे भक्तोंको पढ़ावेगा और अर्थकी व्याख्याद्वारा इसका प्रचार करके उनके हृदयमें धारण करावेगा, वह निःसन्देह मेरेको ही

प्राप्त होगा, और न तो उससे बढ़कर मेरा अतिशय प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्योंमें कोई है और न उससे बढ़कर मेरा अत्यन्त प्रिय पृथ्वीमें दूसरा कोई होवेगा।' यही इस कीर्तन-भक्तिका फल है।

भागवत और रामायणादि सभी भक्तिके ग्रन्थोंमें भगवान्‌के केवल नाम और गुणोंके कीर्तनसे सब पापोंका नाश एवं भगवत्प्राप्ति बतलायी है। श्रीमद्भागवतमें कहा है—

ब्रह्महा पितृहा गोघ्नो मातृहाऽऽचार्यहाघवान्।
श्वादः पुल्कसको वापि शुद्ध्येरन् यस्य कीर्तनात्॥
(६।१३।८)

'ब्राह्मणघाती, पितृघाती, गोघाती, मातृघाती, गुरुघाती—ऐसे पापी तथा चाण्डाल एवं म्लेच्छ जातिवाले भी जिसके कीर्तनसे शुद्ध हो जाते हैं।'

सङ्कीर्त्यमानो भगवाननन्तः
श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम्।
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं
यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः॥
(श्रीमद्भा० १२।१२।४७)

'जिस तरह सूर्य अन्धकारको, प्रचण्ड वायु बादलको छिन्न-भिन्न कर देता है, उसी तरह कीर्तित होनेपर विख्यात प्रभाववाले अनन्त भगवान् मनुष्योंके हृदयमें प्रवेश करके उनके सारे पापोंको निस्सन्देह विध्वंस कर डालते हैं।' एवं—

आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन्।
ततः सद्यो विमुच्येत यद्बिभेति स्वयं भयम्॥
(श्रीमद्भा० १।१।१४)

'जिस परमात्मासे स्वयं भय भी भय खाता है, उस परमात्माके नामका यह घोर संसारमें पड़ा हुआ मनुष्य विवश होकर भी उच्चारण करनेसे तुरंत संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है।'

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्॥
(श्रीमद्भा० १२। ३। ५१)

'हे राजन्! दोषके खजाने कलियुगमें एक ही यह महान् गुण है कि भगवान् कृष्णके कीर्तनसे ही मनुष्य आसक्तिरहित होकर परमात्माको प्राप्त हो जाता है।'

इत्थं हरेर्भगवतो रुचिरावतार-
वीर्याणि बालचरितानि च शन्तमानि।
अन्यत्र चेह च श्रुतानि गृणन् मनुष्यो
भक्तिं परां परमहंसगतौ लभेत॥
(श्रीमद्भा० ११। ३१। २८)

'इस प्रकार इस भागवतमें अथवा अन्य सब शास्त्रोंमें वर्णित भगवान् कृष्णके सुन्दर अवतारोंके पराक्रमोंको तथा परम मङ्गलमय बालचरित्रोंको कहता हुआ मनुष्य परमहंसोंके गतिस्वरूप भगवान्की परा भक्तिको प्राप्त करता है।'

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या
ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते॥
(श्रीमद्भा० ३। ३३। ७)

'अहो! आश्चर्य है कि जिसकी जिह्वापर तुम्हारा पवित्र नाम रहता है, वह चाण्डाल भी श्रेष्ठ है; क्योंकि जो तुम्हारे नामका कीर्तन करते हैं, उन श्रेष्ठ पुरुषोंने तप, यज्ञ, तीर्थस्नान और वेदाध्ययन आदि सब कुछ कर लिया।'

रामचरितमानसमें गोस्वामी तुलसीदासजीने भी कहा है—

**नामु सप्रेम जपत अनयासा। भगत होहिं मुद मंगल बासा॥**
**नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू॥**
**सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥**
**चहुँजुग तीनिकाल तिहुँलोका। भए नाम जपि जीव बिसोका॥**
**कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥**

महर्षि पतञ्जलि भी कहते है—

**तस्य वाचकः प्रणवः।** (योग० १।२७)

'उस परमात्माका वाचक अर्थात् नाम ओंकार है।'

**तज्जपस्तदर्थभावनम्।** (योग० १।२८)

'उस परमात्माके नामका जप और उसके अर्थकी भावना अर्थात् स्वरूपका चिन्तन करना।'

**ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च।**
(योग० १।२९)

'उपर्युक्त साधनसे सम्पूर्ण विघ्नोंका नाश और परमात्माकी प्राप्ति भी होती है। नारदपुराणमें भी कहा है—

**हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।**
**कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥**
(१।४१।११५)

'कलियुगमें केवल श्रीहरिका नाम ही कल्याणका परम साधन है, इसको छोड़कर दूसरा कोई उपाय ही नहीं है।' इस तरह शास्त्रोंमें और भी बहुत-से प्रमाण मिलते हैं।

इस कीर्तन-भक्तिसे पूर्वकालमें बहुत-से तर गये हैं। इतिहास और पुराणोंमें एवं रामायणमें बहुत-से उदाहरण भी मिलते हैं।

भगवान्‌के नाम और गुणोंके कीर्तनके प्रतापसे पूर्वकालमें नारद, वाल्मीक, शुकदेव आदि तथा अर्वाचीन समयमें गौराङ्ग महाप्रभु, तुलसीदास, सूरदास, नानक, तुकाराम, नरसी, मीराबाई आदि अनेक भक्त परमपदको प्राप्त हुए हैं। इनके जीवनका इतिहास विख्यात ही है। परमभक्तोंकी बात तो छोड़ दीजिये, जो महापापी थे वे भी तर गये हैं। श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरिनाम प्रभाऊ॥

अतः जैसे मेघको देखकर पपीहा जलके लिये पी-पी करता है, वैसे ही भगवान्‌में परम प्रेम होनेके लिये एवं भगवान्‌की प्राप्तिके लिये भगवान्‌के नाम और गुणोंके कीर्तनकी नित्य-निरन्तर तत्पर होकर प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये।

## स्मरण

प्रभुके नाम, रूप, गुण, प्रभाव, लीला, तत्त्व और रहस्यभरी अमृतमयी कथाओंका जो श्रद्धा और प्रेमपूर्वक श्रवण तथा पठन किया गया है, उनका मनन करना एवं इस प्रकार मनन करते-करते देहकी सुधि भुलाकर भगवान्‌के स्वरूपमें ध्रुवकी भाँति तल्लीन हो जाना स्मरण-भक्तिका स्वरूप है।

जहाँतक हो सके, एकान्त एवं पवित्र स्थानमें सुखपूर्वक स्थिर, सरल आसनसे बैठकर इन्द्रियोंको विषयोंसे रहित करके कामना और संकल्पको त्यागकर प्रशान्त और वैराग्ययुक्त चित्तसे अथवा चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते—सभी काम करते हुए भी स्वाभाविक शुद्ध और सरल भावसे सगुण-निर्गुण, साकार-*

---

* श्रीमद्भागवतमें सगुण-साकारके ध्यान करनेका यह भी एक प्रकार है—

समं प्रशान्तं सुमुखं दीर्घचारुचतुर्भुजम् ।<br>
सुचारुसुन्दरग्रीवं सुकपोलं शुचिस्मितम् ॥<br>
समानकर्णविन्यस्तस्फुरन्मकरकुण्डलम् ।<br>
हेमाम्बरं घनश्यामं श्रीवत्सश्रीनिकेतनम् ॥<br>
शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितम् ।<br>
नूपुरैर्विलसत्पादं कौस्तुभप्रभया युतम् ॥<br>
द्युमत्किरीटकटककटिसूत्राङ्गदायुतम् ।<br>
सर्वाङ्गसुन्दरं हृद्यं प्रसादसुमुखेक्षणम् ।<br>
सुकुमारमभिध्यायेत् सर्वाङ्गेषु मनो दधत् ॥

( ११ । १४ । ३८-४१ )

'जो सम हैं, प्रशान्त हैं, जिनका मुख सुन्दर है, जिनकी लम्बी-लम्बी चार सुन्दर भुजाएँ हैं, जिनका कण्ठ अति सुन्दर है, जो सुन्दर कपोलवाले हैं, जिनकी मुसकान उज्ज्वल है, जो कानोंमें देदीप्यमान मकराकृत कुण्डलोंको धारण किये हुए हैं, जिनका वर्ण मेघके समान श्याम है, जो पीताम्बरधारी हैं, जिनके हृदयमें श्रीवत्स एवं लक्ष्मीका चिह्न है, जो शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म एवं वनमालासे विभूषित हैं, जिनके चरण नूपुरोंसे सुशोभित हैं, जो कौस्तुभमणि-की कान्तिसे युक्त हैं, जो कान्तिवाले किरीट, कड़े, मेखला और भुजबंधों ( बाजूबंद ) से युक्त हैं, जिनके सम्पूर्ण अङ्ग सुन्दर हैं, जो मनोहर हैं, कृपायुक्त मुख-नेत्रवाले हैं, ऐसे सुकुमार भगवान्के अङ्गोंमें मनको लगाकर सम्यक् प्रकारसे ध्यान करे ।'

निराकारके तत्त्वको जानकर गुण और प्रभावसहित भगवान्‌के स्वरूपका चिन्तन करना, भगवान्‌के नामका मनसे स्मरण करना, भगवान्‌की लीलाओंका स्मरण करके मुग्ध होना, भगवान्‌के तत्त्व और रहस्यको जाननेके लिये उनके गुण, प्रभावका चिन्तन करना, इस तरह स्मरणके बहुत-से प्रकार शास्त्रोंमें बतलाये गये हैं।

प्रभुमें अनन्य प्रेम होकर उसकी प्राप्ति होना इसका उद्देश्य है।

प्रेमी भक्तोंके द्वारा नाम, रूप, गुण, प्रभाव आदिकी अमृतमयी कथाओंका श्रद्धा और प्रेमपूर्वक श्रवण करना, भगवद्विषयक धार्मिक पुस्तकोंका पठन-पाठन करना, भगवान्‌के नामका जप और कीर्तन करना, भगवान्‌के पद एवं स्तोत्रोंके द्वारा अथवा किसी भी प्रकारसे ध्यानके लिये करुणाभावसे स्तुति-प्रार्थना करना तथा भगवान् और महापुरुषोंका आज्ञापालन करना आदि उपर्युक्त स्मरण-भक्तिको प्राप्त करनेके उपाय हैं।

ऊपर बतलायी हुई केवल स्मरण-भक्तिसे भी सारे पाप, विघ्न, अवगुण और दुःखोंका अत्यन्त अभाव हो जाता है। भगवत्-स्मरणके द्वारा मनुष्य जो कुछ भी चाहे प्राप्त कर सकता है। भगवत्-प्राप्तिरूप परमशान्तिकी प्राप्ति भी इससे अति शीघ्र एवं सुगमतासे हो जाती है। श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण, संत, महात्मा सबने एक स्वरसे भगवत्-स्मरण (ध्यान) की बड़ी महिमा गायी है। कठोपनिषद्‌में कहा है—

> एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
> एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्॥
> (१।२।१६)

'यह ओंकार अक्षर ही ब्रह्म है, यही परब्रह्म है, इसी ओंकाररूप अक्षरको जानकर ( उपासना करके ) जो मनुष्य जिस वस्तुको चाहता है, उसको वही मिलती है।'

सन्ध्योपासनविधिके आदिमें लिखा है—

**अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।**
**यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥**

'अपवित्र हो, पवित्र हो, किसी भी अवस्थामें क्यों न हो, जो पुरुष भगवान् पुण्डरीकाक्षका स्मरण करता है, वह बाहर और भीतरसे शुद्ध हो जाता है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्ने कहा है—

**यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।**
**तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥**
( ६।३० )

'जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है, और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता हूँ और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता है।'

**तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।**
**मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥**
**अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।**
**परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्॥**
( गीता ८।७-८ )

'इसलिये हे अर्जुन! तू सब समयमें निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। इस प्रकार मेरेमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिसे युक्त हुआ निःसंदेह मेरेको ही प्राप्त होगा। यह नियम है कि परमेश्वरके ध्यानके अभ्यासरूप योगसे युक्त अन्य तरफ न जानेवाले चित्तसे निरन्तर चिन्तन करता हुआ पुरुष परम प्रकाश-स्वरूप दिव्य पुरुषको अर्थात् परमेश्वरको ही प्राप्त होता है।'

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

'हे अर्जुन! जो पुरुष मेरेमें अनन्यचित्तसे स्थित हुआ सदा ही निरन्तर मेरेको स्मरण करता है, उस निरन्तर मेरेमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ अर्थात् सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।'

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९। २२)

'जो अनन्यभावसे मेरेमें स्थित हुए भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे मेरी उपासना करते हैं, उन नित्य मेरेमें स्थितिवाले पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।'

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥

( गीता १२ । ६—८ )

'और जो मेरे परायण हुए भक्तजन सम्पूर्ण कर्मोंको मेरेमें अर्पण करके मुझ सगुणरूप परमेश्वरको ही तैलधाराके सदृश अनन्य ध्यान-योगसे निरन्तर चिन्तन करते हुए मेरी उपासना करते हैं, उन मेरेमें चित्तको लगानेवाले प्रेमी भक्तोंका मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसारसमुद्रसे उद्धार करनेवाला होता हूँ । इसलिये हे अर्जुन ! तू मेरेमें मनको लगा और मेरेमें ही बुद्धिको लगा, इसके उपरान्त तू मेरेमें ही निवास करेगा, अर्थात् मेरेको ही प्राप्त होगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।'

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥
मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।

( गीता १८ । ५७-५८ )

'हे अर्जुन ! तू सब कर्मोंको मनसे मेरेमें अर्पण करके मेरे परायण हुआ समत्वबुद्धिरूप निष्कामकर्मयोगको अवलम्बन करके निरन्तर मेरेमें चित्तवाला हो । इस प्रकार मेरेमें निरन्तर मनवाला हुआ, मेरी कृपासे जन्म-मृत्यु आदि सब संकटोंको अनायास ही तर जायगा ।'

श्रीमद्भागवतमें कहा है—

कीटः पेशस्कृता रुद्धः कुड्यायां तमनुस्मरन् ।
संरम्भभययोगेन विन्दते तत्सरूपताम् ॥

एवं कृष्णे भगवति मायामनुज ईश्वरे ।
वैरेण पूतपाप्मानस्तमापुरनुचिन्तया ॥
कामाद् द्वेषाद् भयात्स्नेहाद् यथा भक्त्येश्वरे मनः ।
आवेश्य तदघं हित्वा बहवस्तद्गतिं गताः ॥
( ७ । १ । २७-२९ )

'जैसे दीवालपर भँवरेके द्वारा रुद्ध किया हुआ कीड़ा भँवरेके क्रोधके भयसे उसका स्मरण करता हुआ उसके ( भँवरेके ) समान ही हो जाता है, वैसे ही मायासे मनुष्यरूप धारण करनेवाले परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णका वैरभावसे भी बारंबार चिन्तन करते हुए बहुत लोग निष्पाप होकर उनको प्राप्त हो गये । इसी तरह काम, द्वेष, भय, स्नेह तथा भक्तिसे ईश्वरमें मन लगाकर बहुत-से साधक पापरहित होकर परम पदको प्राप्त हो चुके हैं ।'

शृण्वन् गृणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन्
नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते ।
क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयो-
राविष्टचेता न भवाय कल्पते ॥
( श्रीमद्भा० १० । २ । ३७ )

'जो पुरुष सम्पूर्ण क्रियाओंको करते समय आपके मङ्गलमय रूप तथा नामोंका श्रवण, कथन, स्मरण एवं चिन्तन करता हुआ आपके चरणारविन्दोंमें ध्यान रखता है, वह फिर संसारमें नहीं आता ।'

विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते ।
मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते ॥
( श्रीमद्भा० ११ । १४ । २७ )

'विषय-चिन्तन करनेवालेका मन विषयोंमें आसक्त होता है और मेरा बार-बार स्मरण करनेवालेका मन मुझमें ही लीन हो जाता है।'

अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः
क्षिणोत्यभद्राणि शमं तनोति च।
सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं
ज्ञानं च विज्ञानविरागयुक्तम्॥
(श्रीमद्भा० १२।१२।५४)

'श्रीकृष्णचन्द्र महाराजके चरणकमलोंकी स्मृति सब पापोंका नाश करती है तथा अन्तःकरणकी शुद्धि, परमात्मामें भक्ति, विज्ञान-विरागसहित ज्ञान एवं शान्तिका विस्तार करती है।'

श्रीविष्णुसहस्रनामके आदिमें कहा है—

यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसारबन्धनात्।
विमुच्यते नमस्तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे॥

'जिसके स्मरणमात्रसे मनुष्य-जन्मरूपी संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है, संसारको उत्पन्न करनेवाले उस विष्णुके लिये नमस्कार है।'

श्रीतुलसीकृत रामायणमें सुतीक्ष्णकी स्मरण-भक्ति सराहनीय है। सुतीक्ष्ण भगवान्‌के प्रेममें मग्न होकर मन-ही-मन भगवान्‌का स्मरण करता हुआ कहता है—

सो परम प्रिय अति पातकी जिन्ह कबहुँ प्रभु सुमिरन कर्यौ।
ते आजु मैं निज नयन देखौ पूरि पुलकित हिय भर्यौ॥

ते पदसरोज अनेक मुनि करि ध्यान कबहुँक पावहीं ।
ते राम श्रीरघुबंसमनि प्रभु प्रेम तें सुख पावहीं ॥

आगे जाकर भगवान्‌के ध्यानमें ऐसा मस्त हो गया कि उसे अपने तन-मनकी सुधि न रही ।

मुनि मग माझ अचल होइ बैसा । पुलक सरीर पनस फल जैसा ॥

इतना ही नहीं, भगवान्‌के दर्शन होनेपर भी यही वर माँगा कि हे नाथ ! मेरे हृदयमें आप निरन्तर वास करो ।

अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम ।
मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निःकाम ॥

इससे यही सिद्ध होता है कि सुतीक्ष्णको भगवान्‌का ध्यान बहुत ही प्रिय था । इसी प्रकार स्मरण करनेवाले भक्तोंके शास्त्रोंमें बहुत-से नाम आते हैं, किंतु लेखका कलेवर बढ़नेके भयसे सबका चरित्र न देकर केवल कतिपय भक्तोंके नाममात्र दे दिये जाते हैं । जैसे सनकादि, ध्रुव, भीष्म, कुन्ती आदि स्मरण-भक्तिसे ही परम-पदको प्राप्त हुए हैं । इसके अतिरिक्त नीच जातिवाली भिलनी एवं जटायु पक्षीको भी भगवत्-स्मरणसे परमगति मिली ।

गुण, प्रभाव एवं प्रेमसहित भगवान्‌के स्वरूपके ध्यानके समान इस संसारमें शीघ्र उद्धार करनेवाला और कोई भी साधन नहीं है । प्रायः सारे साधनोंका फल भगवत्स्मरण है । इसलिये अपना सारा जीवन उपर्युक्त प्रकारसे भगवत्-चिन्तनमें बितानेकी कटिबद्ध होकर चेष्टा करनी चाहिये । श्रीकबीरदासजीने भी कहा है—

सुमिरनसों मन लाइये, जैसे दीप पतंग ।
प्रान तजे छिन एक में, जरत न मोड़ै अंग ॥

सुमिरनसों मन लाइये, जैसे कीट भिरंग।
कबीर बिसारे आपको, होय जाय तेहि रंग॥

इसलिये भगवत्-प्राप्तिकी इच्छावाले साधक पुरुषको उचित है कि सब कार्य करते हुए भी जैसे कछुआ अण्डोंका, गऊ बछड़ेका, कामी स्त्रीका, लोभी धनका, नटी अपने चरणोंका, मोटर चलानेवाला सड़कका, ध्यान रखता है, वैसे ही वह परमात्माका ध्यान रखे।

## पाद-सेवन

संचिन्तयेद् भगवतश्चरणारविन्दं
वज्राङ्कुशध्वजसरोरुहलाञ्छनाढ्यम्।
उत्तुङ्गरक्तविलसन्नखचक्रवाल-
ज्योत्स्नाभिराहतमहद्धृदयान्धकारम्॥
यच्छौचनिःसृतसरित्प्रवरोदकेन
तीर्थेन मूर्ध्न्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत्।
ध्यातुर्मनःशमलशैलनिसृष्टवज्रं
ध्यायेच्चिरं भगवतश्चरणारविन्दम्॥

(श्रीमद्भा० ३।२८।२१-२२)

'जो वज्र, अङ्कुश, ध्वजा एवं कमल आदि चिह्नोंसे युक्त हैं, जिनके शोभायुक्त, रक्तवर्ण, उन्नत नखमण्डलकी प्रभा भक्तोंके हृदयके महान् अन्धकारको पूर्णतः नष्ट कर देती है, श्रीभगवान्के उन चरण-कमलोंका बड़े प्रेमसे चिन्तन करना चाहिये।'

'जिनके चरणोंके प्रक्षालनजलसे निकली हुई गङ्गाजीके पवित्र जलको सिरपर धारण करके शिवने शिवत्व प्राप्त किया है और जो ध्यान करनेवाले पुरुषोंके अन्तःकरणमें रहनेवाले पापरूप पहाड़ोंके लिये इन्द्रद्वारा छोड़े हुए वज्रके समान हैं अर्थात् जिनके ध्यानसे पापराशि नष्ट हो जाती है, भगवान्के उन चरण-कमलोंका चिरकालतक चिन्तन करना चाहिये ।'

श्रीभगवान्के दिव्य मङ्गलमय स्वरूपकी धातु आदिकी मूर्ति, चित्रपट अथवा मानस-मूर्तिके मनोहर चरणोंका श्रद्धापूर्वक दर्शन, चिन्तन, पूजन और सेवन करते-करते भगवत्-प्रेममें तन्मय हो जाना ही पाद-सेवन कहलाता है ।

बार-बार अतृप्त नयनोंसे भगवान्के चरणारविन्दका दर्शन करना, भगवच्चरणोंका पूजन और सेवन करना तथा चरणोदक लेना, मनसे भगवच्चरणोंका चिन्तन-पूजन करना, भगवान्की चरणपादुकाओंका हाथोंसे पूजन और मनसे चिन्तन तथा पूजन करना, भगवान्की चरणरजको मनसे मस्तकपर धारण करना, हृदयसे लगाना, भगवान्के चरणोंसे स्पर्श किये हुए शय्यासन आदिको तीर्थसे बढ़कर समझ उनका समादर करना, अयोध्या, चित्रकूट, वृन्दावन, मथुरा आदि स्थानोंको, जहाँ-जहाँ भगवान्का अवतार या प्राकट्य हुआ है या जहाँ-जहाँ भगवान्के चरण टिके हैं। परम तीर्थ समझकर—वहाँकी धूलिको भगवान्की चरणधूलि मानकर मस्तकपर धारण करना, जिस वस्तुको भगवान्का चरण-स्पर्श प्राप्त हुआ है, उस वस्तुका हृदयसे आदर करना और उसे मस्तकपर धारण करना और श्रीगङ्गाजीके जलको भगवान्का

चरणोदक समझकर प्रणाम-पूजन, स्नान-पानादिके द्वारा उसका सेवन करना आदि सभी 'पाद-सेवन' भक्तिके ही विभिन्न प्रकार हैं।

ममता, अहंकार और अभिमान आदिका नाश होकर प्रभुके चरणमें अनन्य प्रेमकी प्राप्ति होनेके उद्देश्यसे पाद-सेवन-भक्ति की जाती है।

भगवान्के अनन्य भक्तोंका संग करनेसे भगवान्की चरण-सेवाका तत्त्व, रहस्य और प्रभाव सुननेको मिलता है; उससे श्रद्धा होकर तब यह भक्ति प्राप्त होती है।

केवल इस पाद-सेवन-भक्तिसे भी मनुष्यके सम्पूर्ण दुराचार, दुर्गुण और दुःख सर्वथा नष्ट हो जाते हैं और भगवान्में सहज ही अतिशय श्रद्धा और प्रेम होकर उसे आत्यन्तिकी परमा शान्तिकी प्राप्ति होती है। उसके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता।

शास्त्र और महात्माओंने पाद-सेवन-भक्तिकी बड़ी महिमा गायी है। श्रीशङ्कराचार्य कहते हैं कि भगवान्की चरणकमलरूपी नौका ही संसार-सागरसे पार उतारनेवाली है—

**अपारसंसारसमुद्रमध्ये**
**सम्मज्जतो मे शरणं किमस्ति।**
**गुरो कृपालो कृपया वदैतद्**
**विश्वेशपादाम्बुजदीर्घनौका ॥**

शिष्य—'हे कृपालु गुरुदेव! आप कृपा करके यह बतावें कि इस अपार संसाररूपी समुद्रमें मुझ डूबते हुएके लिये सहारा क्या

है ?' गुरु—'भगवान् विश्वेश्वरके चरणकमलरूप जहाज ही एकमात्र सहारा है ।'

भगवान्के चरणोदकका पान करनेसे और उसे मस्तकपर धारण करनेसे भी कल्याण होता है । भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका चरणामृत पीकर उन्हें नौकासे उस पार ले जाते समयके प्रसंगमें केवटकी महिमा गाते हुए श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार ।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार ॥

नित्य निरन्तर प्रभुके चरणोंका दर्शन और सेवन करके पल-पलमें किस प्रकार आनन्दित होना चाहिये, इसका आदर्श श्रीसीताजी हैं । वनगमनके समय आप भगवान्से कहती हैं—

छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी । रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी ॥
मोहि मग चलत न होइहि हारी । छिनु छिनु चरन सरोज निहारी ॥
पाय पखारि बैठि तरु छाहीं । करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं ॥
सम महि तृन तरु पल्लव डासी । पाय पलोटिहि सब निसि दासी ॥

भगवान् श्रीरामके चरणचिह्न, चरणरज और चरणपादुकाके दर्शन तथा सेवनसे भरतजीको कितना आनन्द प्राप्त होता है और उनकी कैसी प्रेमतन्मय दशा हो जाती है । भगवान् शिवके शब्दोंमें सुनिये—

स तत्र वज्राङ्कुशवारिजाञ्चित-
ध्वजादिचिह्नानि पदानि सर्वतः ॥
ददर्श रामस्य भुवोऽतिमङ्गला-
न्यचेष्टयत्पादरजःसु सानुजः ॥

अहो सुधन्योऽहममूनि राम-
पादारविन्दाङ्कितभूतलानि ।
पश्यामि यत्पादरजो विमृग्यं
ब्रह्मादिदेवैः श्रुतिभिश्च नित्यम् ॥
( अध्यात्मरामायण २ । ९ । २-३ )

'वहाँ उन्होंने सब ओर श्रीरामचन्द्रके वज्र, अङ्कुश, कमल और ध्वजा आदिके चिह्नोंसे सुशोभित तथा पृथ्वीके लिये अति मङ्गलमय चरणचिह्न देखे, उन्हें देखकर भाई शत्रुघ्नके साथ वे उस चरणरजमें लोटने लगे और मन-ही-मन कहने लगे—अहो ! मैं परम धन्य हूँ, जो आज भगवान् श्रीरामजीके उन चरणारविन्दोंके चिह्नोंसे विभूषित भूमिको देख रहा हूँ, जिनकी चरण-रजको ब्रह्मादि देवता और श्रुतियाँ भी सदा खोजती रहती हैं ।'

गोसाइँ तुलसीदासजी कहते हैं—

रज सिर धरि हिय नयनन्हि लावहिं । रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं ॥
नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदयँ समाति ।
मागि मागि आयसु करत राज काज बहु भाँति ॥

अहल्या भगवान्‌के चरणरजको पाकर कृतार्थ हो जाती है और कहती है—

अहो कृतार्थास्मि जगन्निवास ते
पादाब्जसंलग्नरजःकणादहम् ।
स्पृशामि यत्पद्मजशङ्करादिभि-
र्विमृग्यते रन्धितमानसैः सदा ॥
( अ० रा० १ । ५ । ४३ )

'हे जगन्निवास ! आपके चरणकमलोंमें लगे हुए रजःकणोंका स्पर्श पाकर आज मैं कृतार्थ हो गयी । अहो ! आपके जिन चरणारविन्दोंका ब्रह्मा, शंकर आदि सदा चित्त लगाकर अनुसंधान किया करते हैं, आज मैं उन्हींका स्पर्श कर रही हूँ ।'

भगवान्‌के चरणोंका आश्रय लेनेसे मनुष्यके सब दोषोंका नाश हो जाता है, उसकी सारी विपत्तियाँ टल जाती हैं और वह गोपदके समान संसार-सागरसे पार कर जाता है । श्रीमद्भागवतमें कहा है--

तावद्भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं
शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः।
तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं
यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः ॥
(३ । ९ । ६)

'हे प्रभो ! जबतक लोग तुम्हारे अभय चरणकमलोंका सच्चे हृदयसे आश्रय नहीं लेते, तभीतक धन, घर, मित्र आदिके निमित्तसे भय, शोक, स्पृहा, पराजय एवं महान् लोभ--ये सब होते हैं और तभीतक सम्पूर्ण दुःखोंका मूल 'यह मेरा है' ऐसी झूठी धारणा रहती है अर्थात् भगवान्‌की चरण-शरणमें आनेपर यह सब नष्ट हो जाते हैं ।

समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं
महत्पदं पुण्ययशोमुरारेः ।
भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं
पदं पदं यद् विपदां न तेषाम् ॥
(श्रीमद्भा० १० । १४ । ५८)

*

'जिन्होंने संतोंके आश्रयणीय पवित्र यशवाले भगवान्‌के पद-पल्लवरूपी जहाजका आश्रय लिया है, उनके लिये संसार-सागर बछड़ेका पैर टिके, इतना-सा हो जाता है, उन्हें पद-पदमें परम-पद प्राप्त है, इसलिये कभी भी उन्हें विपत्तियोंके दर्शन नहीं होते।'

**त्वय्यम्बुजाक्षाखिलसत्त्वधाम्नि**
**समाधिनाऽऽवेशितचेतसैके।**
**त्वत्पादपोतेन महत्कृतेन**
**कुर्वन्ति गोवत्सपदं भवाब्धिम्॥**
(श्रीमद्भा० १०।२।३०)

'हे कमलनयन! कई संतलोग सम्पूर्ण सत्त्वके धाम तुममें समाधिके द्वारा अपना चित्त तल्लीन करके महात्माओंके द्वारा अनुभूत तुम्हारे चरणकमलोंका जहाज बनाकर संसार-सागरको गोवत्सपदके समान पार कर जाते हैं।'

भगवान्‌के चरणरजकी शरण हुए प्रेमी भक्त तो स्वर्गादिकी तो बात ही क्या, मोक्षतकका तिरस्कार कर चरणरजके सेवनमें ही संलग्न रहना चाहते हैं। नागपत्नियाँ कहती हैं—

**न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं**
**न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम्।**
**न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा**
**वाञ्छन्ति यत्पादरजः प्रपन्नाः॥**
(श्रीमद्भा० १०।१६।३७)

'आपकी चरणधूलिकी शरण ग्रहण करनेवाले भक्तजन न

स्वर्ग चाहते हैं, न चक्रवर्तिता, न ब्रह्माका पद, न सारी पृथ्वीका स्वामित्व और न योगसिद्धियाँ ही; अधिक क्या वे मोक्षपदकी भी वाञ्छा नहीं करते।'

'भगवान्‌की केवल पाद-सेवन-भक्तिसे ही भगवान्‌के अनन्य प्रेमको प्राप्त करनेवाले अनेकों भक्तोंका शास्त्रोंमें वर्णन आता है। अतएव भगवान्‌के पवित्र चरणोंमें श्रद्धापूर्वक मन लगाकर उनका नित्य सेवन करना चाहिये।'

## अर्चन

**श्रीविष्णोरर्चनं ये तु प्रकुर्वन्ति नरा भुवि।**
**ते यान्ति शाश्वतं विष्णोरानन्दं परमं पदम्॥**

(विष्णुरहस्य)

'जो लोग इस संसारमें श्रीभगवान्‌की अर्चा-पूजा करते हैं, वे श्रीभगवान्‌के अविनाशी आनन्दस्वरूप परमपदको प्राप्त होते हैं।' भगवान्‌के भक्तोंसे सुने हुए, शास्त्रोंमें पढ़े हुए, धातु आदिसे बनी मूर्ति या चित्रपटके रूपमें देखे हुए अपने मनको रुचनेवाले किसी भी भगवान्‌के स्वरूपकी बाह्य सामग्रियोंसे भगवान्‌की किसी भी अपने अभिलषित स्वरूपकी मानसिक मूर्ति बनाकर मानसिक सामग्रियोंसे अथवा सम्पूर्ण भूतोंमें परमात्माको स्थित समझकर सबका आदर-सत्कार करते हुए यथायोग्य नानाविध उपचारोंसे श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक उनका सेवन-पूजन करना और उनके तत्त्व, रहस्य तथा प्रभावको समझ-समझकर प्रेममें मुग्ध होना अर्चन-भक्ति है।

पत्र-पुष्प, चन्दन आदि सात्त्विक, पवित्र और न्यायोपार्जित द्रव्योंसे भगवान्‌की प्रतिमाका श्रद्धापूर्वक पूजन करना, भगवान्‌की प्रीतिके लिये शास्त्रोक्त यज्ञादि करना, सबको भगवान्‌का स्वरूप समझकर अपने वर्णाश्रमके अनुसार उनकी यथायोग्य सेवा करना तथा सत्कार, मान, पूजा आदिसे सन्तुष्ट करना और दुखी, अनाथ, अपंग, पीड़ित प्राणियोंमें भूखोंकी अन्नसे, प्यासोंकी जलसे, वस्त्रहीनोंकी वस्त्रादिसे, रोगियोंकी औषधादिसे, अनाथोंकी आश्रय-दानसे, यथावश्यक यथाशक्ति श्रद्धा और सत्कारपूर्वक सबको भगवत्स्वरूप समझकर भगवत्प्रीतिके लिये सेवा करना आदि सभी भगवान्‌की बाह्य पूजाके प्रकार हैं।

शास्त्रोंमें वर्णन किये हुए अपने चित्तको अनायास ही आकर्षित करनेवाले भगवान्‌के किसी भी अलौकिक रूपलावण्ययुक्त, अनन्त सौन्दर्य-माधुर्यमय परम तेजोमण्डित स्वरूपका प्रत्येक अवयव वस्त्राभूषण, आयुधादिसे युक्त और हस्त-पदादिके मङ्गल-चिह्नोंसहित मनके द्वारा चिन्तन करके आह्लादपूर्वक मनमें उसका आवाहन, स्थापन और नानाविध मानसिक सामग्रियोंके द्वारा अत्यन्त श्रद्धा और प्रेमके साथ पूजन करना मानस-पूजाका प्रकार है।

भगवान्‌में अनन्य प्रेम होकर सबको उसकी प्राप्ति हो जाय इस उद्‌देश्यसे परम श्रद्धापूर्वक स्वयं आचरण करना या करवाना इसका प्रयोजन है।

**अर्चन**-भक्तिका स्वरूप और तत्त्व जाननेके लिये भगवान्‌के परम प्रेमी भक्तोंका सङ्ग और सेवन करना चाहिये।

उपर्युक्त प्रकारसे भगवान्‌की पूजा करनेसे मनुष्य जो कुछ चाहता है, वही उसे मिल जाता है और सहज ही उसे भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। श्रीमद्भागवतमें कहा है—

**स्वर्गापवर्गयोः पुंसां रसायां भुवि सम्पदाम्।**
**सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं तच्चरणार्चनम्॥**
**(१०।८१।१९)**

'श्रीभगवान्‌के चरणोंका अर्चन-पूजन करना जीवोंके स्वर्ग और मोक्षका एवं मर्त्यलोक और पाताललोकमें रहनेवाली समस्त सम्पत्तियोंका और सम्पूर्ण सिद्धियोंका भी मूल है।'

अपने-अपने कर्मोंके द्वारा भगवान्‌की पूजासे भगवत्प्राप्ति होती है, इस बातकी घोषणा स्वयं भगवान्‌ने गीतामें की है—

**यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।**
**स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥**
**(१८।४६)**

हे अर्जुन! जिस परमात्मासे सर्वभूतोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह सर्व जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वरको अपने स्वाभाविक कर्मद्वारा पूजकर मनुष्य परम सिद्धिको प्राप्त होता है।

इतना ही नहीं, परम श्रद्धा और प्रेमके साथ भगवान्‌की पूजा की जाय तो वे स्वयं अपने दिव्य मङ्गल विग्रह-स्वरूपमें प्रकट होकर भक्तके अर्पण किये हुए पदार्थोंको खाते हैं। भगवान् स्वयं कहते हैं—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥
(९ । २६)

'हे अर्जुन ! पत्र, पुष्प, फल, जल इत्यादि जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेमसे अर्पण करता है, उस शुद्ध बुद्धि निष्काम प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं सगुणरूपसे प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ ।'

राजा पृथु, अम्बरीष आदि बहुतोंने विधिपूर्वक नाना उपचारोंसे और मन-इन्द्रियोंसे भगवान्‌की पूजा की और वे अनायास ही भगवान्‌को प्राप्त हो गये । इनकी तो बात ही क्या नाना उपचारोंके बिना भी केवल भक्तिपूर्वक पूजा करनेवाले सुदामाने केवल चावलोंकी कनियोंसे, गजेन्द्रने एक पुष्पसे, द्रौपदीने शाकपत्रसे भगवान्‌को पूजकर परम सिद्धि प्राप्त की । शबरी-जैसी हीन जातिकी स्त्री भी केवल बेरोंसे ही भगवान्‌को संतुष्टकर परमपदको प्राप्त हो गयी ।

अतएव भगवान्‌के प्रेममें विह्वल होकर श्रद्धापूर्वक अपनी-अपनी रुचि और भावनाके अनुसार भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये ।

## वन्दन

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं
तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम् ॥

भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥
( श्रीमद्भा० ११ । ५ । ३३ )

'हे पुरुषोत्तम ! हे प्रभो ! जो सर्वदा ध्यान करने योग्य हैं, तिरस्कारको नष्ट करनेवाले हैं, समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले हैं, जो तीर्थोंके आधार हैं, जिन्हें शिव और ब्रह्मा सिरसे नमस्कार करते हैं और शरणागतोंकी रक्षा करनेमें प्रवीण हैं, जो सेवकोंकी विपत्तिके नाशक हैं, नमस्कार करनेवालोंके रक्षक एवं संसार-सागरके जहाज हैं, तुम्हारे उन चरणकमलोंकी मैं वन्दना करता हूँ ।'

भगवान्‌के शास्त्रवर्णित स्वरूप, भगवान्‌के नाम, भगवान्‌की धातु आदिकी मूर्ति, चित्र अथवा मानसिक मूर्तिको शरीर अथवा मनसे श्रद्धासहित साष्टाङ्ग प्रणाम करना या समस्त चराचर भूतोंको परमात्माका स्वरूप समझकर श्रद्धापूर्वक शरीर या मनसे प्रणाम करना और ऐसा करते हुए भगवत्प्रेममें मुग्ध होना वन्दन-भक्ति है ।

भगवान्‌के मन्दिरोंमें जाकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवान्‌की मूर्तिको साष्टाङ्ग प्रणाम करना, अपने-अपने घरोंमें भगवान्‌की प्रतिमा या चित्रपटको, भगवान्‌के नामको, भगवान्‌के चरण और चरण-पादुकाओंको, भगवान्‌के तत्त्व, रहस्य, प्रेम, प्रभाव और भगवान्‌की मधुर लीलाओंका जिनमें वर्णन हो, ऐसे सत्-शास्त्रोंको और सम्पूर्ण चराचर जीवोंको भगवान्‌का स्वरूप समझकर या उनके हृदयमें भगवान्‌को स्थित समझकर विनयपूर्वक श्रद्धासहित गद्गद

भावसे प्रणाम करना वन्दन-भक्तिके प्रकार हैं। श्रीमद्भागवतमें योगेश्वर कवि कहते हैं—

> खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
> ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
> सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
> यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः॥
> (११।२।४१)

'आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, नक्षत्र, दिशाएँ और वृक्ष-लता आदि एवं नदियाँ, समुद्र और सम्पूर्ण भूतप्राणी भगवान्‌के शरीर हैं, अतः भगवान्‌का अनन्यभक्त यावन्मात्र जगत्‌को भगवद्-भावसे प्रणाम करे।'

भगवान्‌को सर्वत्र और सब ओर समझकर उन्हें किस प्रकार प्रणाम करना चाहिये, इसके लिये अर्जुनका उदाहरण बड़ा सुन्दर है। अर्जुन भगवान्‌को नमस्कार करते हुए कहते हैं—

> नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
> नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
> अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं
> सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः।
> (गीता ११।४०)

'हे अनन्त सामर्थ्यवाले! आपके लिये आगेसे और पीछेसे भी नमस्कार होवे; हे सर्वात्मन्! आपके लिये सब ओरसे ही नमस्कार होवे; क्योंकि अनन्त पराक्रमशाली आप सब संसारको व्याप्त किये हुए हैं, इससे आप ही सर्वरूप हैं।'

श्रीतुलसीदासजी महाराज समस्त जगत्‌को 'सीयराममय' देखकर प्रणाम करते हैं—

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥

भगवान्‌में अनन्य प्रेम होकर भगवान्‌को प्राप्त करना इस भक्तिका उद्देश्य है। भगवान्‌के प्यारे प्रेमी भक्तोंका संग और सेवन करके उनके द्वारा भगवान्‌के श्रद्धा, प्रेम, रहस्य, प्रभाव और तत्त्वका मर्म समझनेसे यह वन्दन-भक्ति प्राप्त होती है।

भगवान्‌के रहस्यको समझकर उन्हें प्रणाम करनेवाला सब दुःखोंसे छूट जाता है। अनुस्मृतिके वचन हैं—

न वासुदेवात्परमस्ति मङ्गलं
न वासुदेवात्परमस्ति पावनम्।
न वासुदेवात्परमस्ति दैवतं
तं वासुदेवं प्रणमन्न सीदति ॥ १०१ ॥

'भगवान् वासुदेवसे अधिक और कुछ मङ्गलमय नहीं है, वासुदेवसे अधिक और कुछ पावन नहीं है एवं वासुदेवसे श्रेष्ठ और कोई आराध्य देवता नहीं है, उन वासुदेवको नमस्कार करनेवाला कभी दुखी नहीं होता।'

श्रद्धा और प्रेमपूर्वक भगवान्‌को केवल साष्टाङ्ग प्रणाम करनेसे भी मनुष्य सब पापोंसे मुक्त होकर परमपदको प्राप्त हो सकता है—

एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो
दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म
कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय ॥
(भीष्मस्तवराज ९१)

'भगवान् श्रीकृष्णको किया हुआ एक भी प्रणाम दस अश्वमेध-यज्ञोंके अवभृथस्नानके बराबर है, (इतना ही नहीं, विशेषता यह है कि) दस अश्वमेध करनेवालेको तो फिर जन्म लेना पड़ता है; किंतु भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम करनेवालेको फिर जन्म नहीं लेना पड़ता।'

श्रद्धापूर्वक भगवान्‌को प्रणाम करनेवालेकी तो बात ही क्या है, किसी भी अवस्थामें भगवान्‌को प्रणाम करनेसे सब पापोंका नाश हो जाता है—

पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुत्त्वा वा विवशो ब्रुवन्।
हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात्॥
(श्रीमद्भा० १२।१२।४६)

'पतित, स्खलित, आर्त, छींकता हुआ अथवा किसी प्रकारसे परवश हुआ पुरुष भी यदि ऊँचे स्वरसे 'हरये नमः' इस प्रकार बोल उठता है तो वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है।'

भगवान्‌के अनेकों भक्त इस प्रकार केवल नमस्कार करके ही परमपदको प्राप्त हो गये; परंतु इनका नमस्कार करना बड़ा ही अनोखा होता है। देखिये, अक्रूरजी किस प्रकार मुग्ध होकर नमस्कार करते हैं—

रथात्तूर्णमवप्लुत्य सोऽक्रूरः स्नेहविह्वलः।
पपात चरणोपान्ते दण्डवद् रामकृष्णयोः॥
(श्रीमद्भा० १०।३८।३४)

'अक्रूर प्रेमविह्वल होकर बड़ी शीघ्रताके साथ रथसे कूदकर

भगवान् बलराम और श्रीकृष्णके चरणोंके पास दण्डवत् गिर पड़े ।'

पितामह भीष्म गद्गद होकर भगवान्‌को नमस्कार करते हैं और भगवान् तत्काल ही उन्हें अपना दिव्य ज्ञान दे देते हैं। वैशम्पायन मुनि कहते हैं—

एतावदुक्त्वा वचनं भीष्मस्तद्गतमानसः ।
नम इत्येव कृष्णाय प्रणाममकरोत्तदा ॥
अभिगम्य तु योगेन भक्तिं भीष्मस्य माधवः ।
त्रैलोक्यदर्शनं ज्ञानं दिव्यं दत्त्वा ययौ हरिः ॥

( भीष्मस्तवराज १००-१०१ )

'जिनका मन भगवान्‌में तन्मय हो चुका है ऐसे भीष्मने अनेक प्रकारसे भगवान्‌की स्तुति करनेके बाद 'नमः कृष्णाय' इतना कहकर भगवान्‌को प्रणाम किया, तब भगवान् श्रीकृष्ण योग-शक्तिद्वारा भीष्मकी भक्तिको समझकर उसे त्रिलोकीको ( भगवत्स्वरूप ) प्रत्यक्ष करनेवाला दिव्य ज्ञान देकर चले गये ।'

अतएव श्रीभगवान्‌के प्रेममें विभोर होकर उपर्युक्त प्रकारसे भगवान्‌की वन्दन-भक्ति करनेकी प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये ।

## दास्य

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत ।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ॥

भगवान्‌के गुण, तत्त्व, रहस्य और प्रभावको जानकर श्रद्धा-प्रेमपूर्वक उनकी सेवा करना और उनकी आज्ञाका पालन करना दास्य-भक्ति है ।

मन्दिरोंमें भगवान्‌के विग्रहोंकी सेवा करना, मन्दिर-मार्जनादि करना, मनसे प्रभुके स्वरूपका ध्यान करके उनकी सेवा करना, सम्पूर्ण चराचरको प्रभुका स्वरूप समझकर सबकी यथाशक्ति, यथायोग्य सेवा करना, गीता आदि शास्त्रोंको भगवान्‌की आज्ञा मानकर उसके अनुसार आचरण करना और जो कर्म भगवान्‌की रुचि, प्रसन्नता और इच्छाके अनुकूल हों उन्हीं कर्मोंको करना—ये सब दास्य-भक्तिके प्रकार हैं।

भगवान्‌के रहस्यको जाननेवाले प्रेमी भक्तोंके सङ्ग और सेवनसे दास्य-भक्तिकी प्राप्ति होती है।

भगवान्‌में अनन्य प्रेमकी प्राप्ति और नित्य-निरन्तर सेवाके लिये भगवान्‌के समीप रहनेके उद्देश्यसे दास्य-भक्ति की जाती है।

केवल इस दास्य-भक्तिसे भी मनुष्यको सहज ही भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। अर्जुनने गीतामें कहा है—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥
(२।७)

'कायरतारूप दोष करके उपहत हुए स्वभाववाला और धर्मके विषयमें मोहितचित्त हुआ मैं आपको पूछता हूँ, जो कुछ निश्चय किया हुआ कल्याणकारक साधन हो वह मेरे लिये कहिये, क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ, इसलिये आपके शरण हुए मेरेको शिक्षा दीजिये।

भगवान्‌ने भी कहा है—

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिमवाप्स्यसि॥
(गीता १२।१०)

'यदि तू अभ्यासमें भी असमर्थ है तो केवल मेरे लिये कर्म करनेके ही परायण हो! इस प्रकार मेरे अर्थ कर्मोंको करता हुआ भी मेरी प्राप्तिरूप सिद्धिको ही प्राप्त होगा।'

गोस्वामी तुलसीदासजी तो कहते हैं कि दास्यभावके बिना भवसागरसे उद्धार ही नहीं हो सकता—

सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारि॥

श्रीलक्ष्मण, हनुमान्, अङ्गद आदि इस दास्य-भक्तिके आदर्श उदाहरण हैं। भगवान् श्रीरामके वन जाते समय लक्ष्मणजीकी दशाका वर्णन करते हुए गोसाईंजी कहते हैं—

उतरु न आवत प्रेम बस गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह तजहु त काह बसाइ॥

माता सुमित्राने लक्ष्मणको रामके साथ जाकर उनकी सेवा करनेका कैसा सुन्दर उपदेश दिया है—

रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥
जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥

श्रीहनुमान्‌जीका तो सारा जीवन ही दास्य-भक्तिसे ओतप्रोत

है। प्रथम ही ऋष्यमूक पर्वतपर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको पहचानकर हनुमान्‌जी कहते हैं—

एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान॥
जदपि नाथ बहु अवगुन मोरें। सेवक प्रभुहि परै जनि भोरें॥
नाथ जीव तव मायाँ मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा॥
सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें॥

भगवान् भी अपनी सेवक-वत्सलताका परिचय देते हुए हनुमान्‌को उठाकर हृदयसे लगा लेते हैं और प्रेमाश्रुओंसे उनके अङ्गोंका सिञ्चन करते हुए कहते हैं—

सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना॥
समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्यगति सोऊ॥

दास्य-भक्तिका भक्त अपने स्वामीकी कृपाका कितना विश्वासी होता है, इसके सम्बन्धमें हनुमान्‌जीने विभीषणसे जो कुछ कहा है, वह स्मरण रखने योग्य है—

सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती॥
कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबही बिधि हीना॥
अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर॥

अङ्गदजीको जब भगवान् श्रीराम अयोध्यासे लौट जानेको कहते हैं, तब अङ्गदजी भगवान्‌से प्रार्थना करते हैं—

मोरें तुम्ह प्रभु गुर पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता॥
तुम्हहि बिचारि कहहु नरनाहा। प्रभु तजि भवन काज मम काहा॥

बालक ग्यान बुद्धि बल हीना। राखहु सरन नाथ जन दीना॥
नीचि टहल गृह कै सब करिहउँ। पद पंकज बिलोकि भव तरिहउँ॥

ऐसे अनेकों उदाहरण हैं, अतएव सबको चाहिये कि भगवान्के प्रेममें विह्वल होकर तन-मन-धन सब कुछ अर्पण करके भगवान्की दास्य-भक्ति करें।

## सख्य

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्॥
( श्रीमद्भा० १०। १४। ३२ )

'उन नन्दगोपके व्रजमें रहनेवाले लोगोंका भाग्य धन्य है! धन्य है! जिनका मित्र परमानन्द परिपूर्ण सनातन ब्रह्म है।'

भगवान्के प्रभाव, तत्त्व, रहस्य और महिमाको समझकर परम विश्वासपूर्वक मित्रभावसे उनकी रुचिके अनुसार बन जाना, उनमें अनन्य प्रेम करना और उनके गुण, रूप और लीलापर मुग्ध होकर नित्य-निरन्तर प्रसन्न रहना सख्य-भक्ति है।

'अपने आवश्यक-से-आवश्यक कामको छोड़कर, प्यारे प्रेमीके कामको आदरपूर्वक करना, प्यारे प्रेमीके कामके सामने अपने कामको तुच्छ समझकर उससे लापरवाह हो जाना, प्यारे प्रेमीके लिये महान् परिश्रम करनेपर भी उसे अल्प ही समझना, प्यारा जिस बातसे प्रसन्न होता हो, उसी बातको लक्ष्यमें रखकर हर समय उसीके लिये प्राणपर्यन्त चेष्टा करना, वह जो कुछ भी

करे उसीमें सदा संतुष्ट रहना अपनी कोई भी वस्तु किसी भी प्रकारसे प्रेमीके काम आ जाय तो परम प्रसन्न होना, अपने शरीरपर और अपनी वस्तुपर जैसी अपनी आत्मीयता और अधिकार है, वैसा ही अपने प्यारे प्रेमीका समझे और इसी प्रकार उसकी वस्तु और शरीरपर अपना अधिकार और आत्मीयता माने, अपने धन, जीवन और देहादि प्यारे प्रेमीके काममें लग सकें तो उनको सफल समझना, उसके साथ रहनेकी निरन्तर इच्छा रखना, उसके दर्शन, भाषण, चिन्तन और स्पर्शसे प्रेममें निमग्न हो जाना, उनके नाम, रूप, गुण और चरित्रोंको सुनकर, कहकर, पढ़कर और यादकर अत्यन्त प्रसन्न होना, किसीके द्वारा मित्रका संदेश पाकर परम प्रसन्न होना और उसके वियोगमें व्याकुल होना तथा प्रतिक्षण उससे मिलनेकी आशा और प्रतीक्षा करते रहना आदि सखाभावके प्रकार हैं।

प्यारे प्रेमीको परमसुख हो, उसमें अपना सख्यप्रेम पूर्णरूपसे बढ़ जाय और उससे अपना कभी वियोग न हो, इसी उद्देश्यसे सख्य-भक्ति की जाती है।

सख्य-भक्तिकी प्राप्तिके लिये भगवान्‌के प्रेमी सखाओंका सङ्गसेवन, उनके जीवन-चरित्रोंका अध्ययन और उनके तथा भगवान्‌के गुण, लीला और प्रभावका उनके प्रेमी भक्तोंद्वारा श्रवण करना चाहिये।

इस प्रकारकी केवल सख्य-भक्तिसे भी मनुष्यके दुःख और दोषोंका अत्यन्त अभाव होकर भगवान्‌की प्राप्ति और भगवान्‌में

परम प्रेम हो जाता है । यहाँतक कि भगवान् उस प्रेमी भक्तके अधीन हो जाते हैं और फिर उसके आनन्द और शान्तिका पार नहीं रहता ।

मित्रका मित्रके प्रति क्या कर्तव्य होना चाहिये, इस विषयपर भगवान् श्रीराम सखा सुग्रीवसे कहते हैं—

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी । तिन्हहि बिलोकत पातक भारी ॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना । मित्रक दुख रज मेरु समाना ॥
जिन्ह कें असि मति सहज न आई । ते सठ कत हठि करत मिताई ॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा । गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा ॥
देत लेत मन संक न धरई । बल अनुमान सदा हित करई ॥
बिपति काल कर सतगुन नेहा । श्रुति कह संत मित्र गुन एहा ॥

इस सख्य-भक्तिके उदाहरण श्रीविभीषण, सुग्रीव, उद्धव, अर्जुन, सुदामा, श्रीदामादि व्रजसखा आदि हैं ।

लंका-विजयके बाद विभीषण चाहते हैं--भगवान् एक बार मेरे घर पधारकर मुझे कृतार्थ करें और भगवान्से इसके लिये प्रार्थना करते हैं । सखाकी बात सुनकर भगवान् प्रेमविभोर हो जाते हैं, उनके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु आ जाते हैं और कहते हैं--भाई ! तुम्हारा सब कुछ मेरा है, परन्तु इस समय भरतकी दशाका स्मरण करके मैं ठहर नहीं सकता ।

तोर कोस गृह मोर सब सत्य बचन सुनु भ्रात ।
भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प सम जात ॥

सुग्रीवके साथ सख्य स्थापित करके भगवान् अपनी प्राणप्रिया

सीताको भूल जाते हैं और पहले सुग्रीवकी चिन्तामें लग जाते हैं।

तिय बिरही सुग्रीव सखा, लखि प्रान प्रिया बिसराई ॥

और सुग्रीवसे आप कहते हैं—

सखा सोच त्यागहु बल मोरें । सब बिधि घटब काज मैं तोरें ॥

उद्धवके साथ भगवान् इतना प्रेम करते थे कि एक बार उनसे बोले—'भैया उद्धव ! तुम-जैसे प्रेमी मुझको जितने प्यारे हैं, उतने प्यारे मुझे ब्रह्मा, शंकर, संकर्षण, लक्ष्मी और अपनी आत्मा भी नहीं है।'

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः।
न च सङ्कर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान् ॥
(श्रीमद्भा० ११ । १४ । १५)

उद्धवजीका भगवान् श्रीकृष्णसे बहुत गहरा सख्य, प्रेम था, इसीसे भगवान् उनके सामने मनकी कोई बात छिपाते नहीं थे। अपनी परम प्रेमिका गोपियोंको संदेश भेजनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण उद्धवको ही सर्वोत्तम पात्र चुनते हैं। उस समयके वर्णनमें श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

वृष्णीनां प्रवरो मन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा।
शिष्यो बृहस्पतेः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः ॥
तमाह भगवान् प्रेष्ठं भक्तमेकान्तिनं क्वचित्।
गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रपन्नार्तिहरो हरिः ॥

गच्छोद्धव व्रजं सौम्य पित्रोर्नौ प्रीतिमावह।
गोपीनां मद्वियोगाधिं मत्संदेशैर्विमोचय॥
( श्रीमद्भा० १० । ४६ । १-३ )

'यदुवंशियोंके श्रेष्ठ मंत्री बृहस्पतिके साक्षात् शिष्य एवं अत्यन्त बुद्धिमान् उद्धव भगवान् श्रीकृष्णके परम प्रिय सखा थे। शरणागतका दुःख दूर करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने एक दिन उस अनन्य एवं अत्यन्त प्रिय भक्त उद्धवका हाथसे हाथ पकड़कर कहा—'प्यारे उद्धव! तुम व्रजमें जाकर मेरी माता एवं पिताको प्रसन्न करो, तथा मेरे संदेशोंके द्वारा गोपियोंको वियोगके रोगसे मुक्त करो।'

अर्जुनके सख्यभावकी तो भगवान् स्वयं घोषणा करते हैं—

'भक्तोऽसि मे सखा चेति'—तुम मेरे भक्त और सखा हो ( गीता ४ । ३ ) 'इष्टोऽसि मे दृढमिति'—तुम मेरे परम प्यारे हो ( गीता १८ । ६४ )।

अश्वत्थामाके द्वारा उत्तराके गर्भस्थ बालक परीक्षित्के मारे जानेपर भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—यदि यह सत्य है कि मैंने अपनी जानमें अर्जुनसे कभी भी मित्रतामें कोई बाधा नहीं आने दी है तो यह मरा हुआ बालक जी उठे।

यथाहं नाभिजानामि विजयेन कदाचन।
विरोधं तेन सत्येन मृतो जीवत्वयं शिशुः॥
( महा० अश्वमेध० ६९ । २१ )

मित्र सुदामाको देखकर भगवान् कैसे प्रेमविह्वल हो जाते हैं

और किस प्रकार सुदामाका आदर करते हैं, इस प्रसङ्गमें श्रीशुकदेवजी लिखते हैं—

सख्युः प्रियस्य विप्रर्षेरङ्गसङ्गातिनिर्वृतः ।
प्रीतो व्यमुञ्चदब्बिन्दून् नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः ॥
अथोपवेश्य पर्यङ्के स्वयं सख्युः समर्हणम् ।
उपहृत्यावनिज्यास्य पादौ पादावनेजनीः ॥
अग्रहीच्छिरसा राजन् भगवाँल्लोकपावनः ।
व्यलिम्पद् दिव्यगन्धेन चन्दनागुरुकुङ्कुमैः ॥
(श्रीमद्भा० १० । ८० । १९-२१ )

कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण अपने प्रिय सखा ब्रह्मर्षि सुदामाके अङ्गस्पर्शसे अत्यन्त हर्षित हुए एवं उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बहने लगे । इसके बाद उन्हें शय्यापर बैठाकर स्वयं भगवान्‌ने अपने हाथों उनके चरण धोये और उनकी पूजा की । लोकपावन भगवान्‌ने उनका चरणोदक अपने सिरपर रखा और उनके शरीरपर दिव्य गन्ध, चन्दन, अगुरु और कुङ्कुम आदि लगाया ।

इन भगवान्‌के परम प्यारे सखाओंकी तो बात ही क्या है, भीलोंका राजा गुह भी भगवान्‌से सख्य करके संसार-सागरसे तर गया ।

अतएव भगवान्‌को ही अपना एकमात्र परम प्रियतम समझकर अपना सर्वस्व उनको मानकर परम प्रेमभावसे सख्य-भक्ति करनी चाहिये ।

## आत्मनिवेदन

वासुदेवाश्रयो मर्त्यो वासुदेवपरायणः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम् ॥
(वि० स० १३०)

'जिस मनुष्यने भगवान् वासुदेवका आश्रय लिया है और जो उन्हींके परायण है; उसका अन्तःकरण सर्वथा शुद्ध हो जाता है एवं वह सनातन ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है।'

परमात्माके तत्त्व, रहस्य, प्रभाव और महिमाको समझकर ममता और अहंकाररहित होकर अपने तन-मन-धन-जनसहित अपने-आपको और सम्पूर्ण कर्मोंको श्रद्धा और परम प्रेमपूर्वक परमात्माको समर्पण कर देना आत्मनिवेदन-भक्ति है।

हानि-लाभ, जय-पराजय, यश-अपयश, मान-अपमान, सुख-दुःख आदिकी प्राप्तिमें उन्हें भगवान्‌का भेजा हुआ पुरस्कार मानकर प्रसन्न रहना; तन-धन, स्त्री-पुत्र आदि सभीमें ममता और अहंकारका अभाव हो जाना, भगवान् यन्त्री हैं और मैं उनके हाथका यन्त्र हूँ, ऐसा निश्चय करके कठपुतलीकी भाँति भगवान्‌के इच्छानुकूल ही सब कुछ करना; भगवान्‌के रहस्य और प्रभावको जाननेके लिये उनके नाम, रूप, गुण, लीलाके श्रवण, मनन, कथन, अध्ययन और चिन्तनादिमें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक तन-मन आदिको लगा देना; इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि सभीपर एकमात्र भगवान्‌का ही अधिकार समझना; भगवान्‌की ही वस्तु भगवान्‌के अर्पण की गयी है ऐसा भाव होना; जिस-किसी भी

प्रकारसे भगवान्‌की सेवा बनी रहे इसीमें आनन्द मानना, सब कुछ प्रभुके अर्पण करके स्वाद, शौक, विलास, आराम, भोग आदि इच्छाका सर्वथा अभाव हो जाना; सर्वत्र, सर्वदा और सर्वथा एक भगवान्‌का ही अनुभव करना, भगवान्‌की इच्छाके अतिरिक्त स्वतन्त्र कोई इच्छा न करना, भगवान्‌के भरोसेपर सदा निर्भय, निश्चिन्त और प्रसन्न रहना और भगवान्‌की भक्तिको छोड़कर मुक्तिकी भी इच्छा न होना आदि सभी इस आत्मनिवेदन-भक्तिके प्रकार हैं।

भगवान्‌में अनन्य परम प्रेम और भगवान्‌की प्राप्तिके लिये यह आत्मनिवेदन-भक्ति की जाती है।

भगवान्‌के शरणागत प्रेमी भक्तोंका सङ्ग-सेवन करनेसे और उनके द्वारा भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, तत्त्व, महिमा आदिका श्रवण और मनन करनेसे यह भक्ति प्राप्त होती है।

भगवान्‌ने स्वयं इस आत्मनिवेदनरूपा-शरण भक्तिका महत्त्व प्रकट करते हुए इसके परमफलकी गीतामें बड़ी प्रशंसा की है। आप कहते हैं—

**दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।**
**मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥**
(७।१४)

**मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।**
**स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥**
(९।३२)

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥
(९। ३४)

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शांतिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥
(१८-६२)

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥
(१८-६६)

'यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी योग-माया बड़ी ही दुस्तर है, परंतु जो पुरुष मेरेको ही निरंतर भजते हैं यानी मेरी शरण आते हैं, वे इस मायाको उल्लङ्घन कर जाते हैं अर्थात् संसारसे तर जाते हैं।'

'हे अर्जुन! स्त्री, वैश्य और शूद्रादिक तथा पापयोनिवाले भी जो कोई होवें वे भी मेरे शरण होकर तो परम गतिको ही प्राप्त होते हैं।'

केवल मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्मामें ही अनन्य प्रेमसे नित्य-निरन्तर अचल मनवाला हो और मुझ परमेश्वरको ही श्रद्धा-प्रेमसहित निष्कामभावसे नाम, गुण और प्रभावके श्रवण, कीर्तन, मनन और पठन-पाठनद्वारा निरन्तर भजनेवाला हो तथा मन, वाणी और शरीरके द्वारा सर्वस्व अर्पण करके अतिशय श्रद्धा-भक्ति और प्रेमसे विह्वलतापूर्वक मेरा

पूजन करनेवाला हो और मुझ सर्वशक्तिमान्, विभूति, बल, ऐश्वर्य, माधुर्य, गम्भीरता, उदारता, वात्सल्य और सुहृदता आदि गुणोंसे सम्पन्न सबके आश्रयरूप वासुदेवको विनयभावपूर्वक भक्तिसहित साष्टाङ्ग दण्डवत्-प्रणाम कर । इस प्रकार मेरे शरण हुआ तू आत्माको मेरेमें एकीभाव करके मेरेको ही प्राप्त होवेगा ।'

'हे भारत ! सब प्रकारसे उस परमेश्वरकी अनन्यशरणको प्राप्त हो, उस परमात्माकी कृपासे ही परम शान्तिको और सनातन परमधामको प्राप्त होगा ।'

'सर्वधर्मोंको अर्थात् सम्पूर्ण कर्मोंके आश्रयको त्यागकर केवल एक मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्माकी ही अनन्यशरणको प्राप्त हो, मैं तेरेको सम्पूर्ण पापोंसे मुक्तकर दूँगा, तू शोक मत कर ।'

इस प्रकार जो पुरुष भगवान्के प्रति आत्मनिवेदन कर देता है उसके सम्पूर्ण अवगुण, पाप और दुखोंका अत्यन्त नाश हो जाता है और उसमें श्रवण-कीर्तनादि सभी भक्तियोंका विकास हो जाता है । उसके आनन्द और शान्तिका पार नहीं रहता । भगवान् उससे फिर कभी अलग नहीं हो सकते । भगवान्का सर्वस्व उसका हो जाता है । वह परम पवित्र हो जाता है, उसके दर्शन, भाषण और चिन्तनसे भी पापात्मा लोग पवित्र हो जाते हैं । वह तीर्थोंके लिये तीर्थरूप बन जाता है । महाराज परीक्षित् श्रीशुकदेवजीसे कहते हैं—

सान्निध्यात्ते महायोगिन् पातकानि महान्त्यपि ।
सद्यो नश्यन्ति वै पुंसां विष्णोरिव सुरेतराः ॥
(श्रीमद्भा० १ । १९ । ३४)

'जैसे भगवान् विष्णुके सान्निध्यमात्रसे तुरन्त दैत्योंका नाश हो जाता है, वैसे ही हे महायोगिन् ! आपके सान्निध्यमात्रसे बड़े-से-बड़े पापसमूह नष्ट हो जाते हैं'—

धर्मराज युधिष्ठिर श्रीविदुरजीसे कहते हैं—

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो ।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता ॥
(श्रीमद्भा० १ । १३ । १०)

'भगवन् ! आप-जैसे भगवद्भक्त स्वयं तीर्थस्वरूप हैं, वे अपने हृदयमें स्थित भगवान्के द्वारा तीर्थोंको तीर्थ बनाते हैं ।'

प्रचेतागण भगवान्की स्तुति करते हुए कहते हैं—

तेषां विचरतां पद्भ्यां तीर्थानां पावनेच्छया ।
भीतस्य किं न रोचेत तावकानां समागमः ॥
(श्रीमद्भा० ४ । ३० । ३७)

'जो तुम्हारे भक्त तीर्थोंको पावन बनानेके लिये भूतलपर विचरते रहते हैं, भला, संसारसे भयभीत हुए किस मनुष्यको उनका समागम न रुचेगा ।'

श्रीशुकदेवजी महाराज भगवान्की स्तुति करते हुए कहते हैं—

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा
आभीरकङ्का यवनाः खसादयः ।

येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः
शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥
( श्रीमद्भा० २ । ४ । १८ )

'जिनके आश्रित भक्तोंका आश्रय लेकर किरात, हूण, आन्ध्र, भील, कसाई, आभीर, कंक, यवन, खस आदि तथा अन्य बड़े-से-बड़े पापी भी शुद्ध हो जाते हैं, उन भगवान्‌के चरणोंमें नमस्कार है ।'

भगवान्‌के प्रेमका मूर्तिमान् विग्रह बने हुए ऐसे भक्तको सारा संसार परम प्रेममय और परम आनन्दमय प्रतीत होने लगता है । वह जिस मार्गसे जाता है उसी मार्गमें श्रद्धा, प्रेम, भक्ति, आनन्द, समता और शान्तिका प्रवाह बहने लगता है । ऐसे भक्तको अपने ऊपर धारणकर धरणी धन्य और सनाथ होती है । पितरगण प्रमुदित हो जाते हैं और देवता नाचने लगते हैं ।

मोदन्ते पितरो नृत्यन्ति देवताः सनाथा चेयं भूर्भवति ।
( नारदभक्तिसूत्र ७१ )

श्रीगोपियाँ, भक्त प्रह्लाद, महाराजा बलि आदि इस आत्म-निवेदन-भक्तिके परम भक्त हुए हैं ।

इसलिये मनुष्यमात्रको मन, वाणी, शरीरसे सब प्रकारसे श्रीभगवान्‌के शरण होनेके लिये कटिबद्ध होकर प्रयत्न करना चाहिये ।

## उपसंहार

भगवान्‌को प्राप्त करनेके लिये कर्म, योग, ज्ञान—सभी मार्ग उत्तम हैं, परन्तु भक्तिकी तो शास्त्रोंमें बड़ी ही प्रशंसा की गयी है। नवधा भक्तिमेंसे जिनमें एक भी भक्ति होती है, वह संसार-सागरसे अनायास तरकर भगवान्‌को पा जाता है; फिर प्रह्लादकी भाँति जिनमें नवों भक्तियोंका विकास है, उनका तो कहना ही क्या है। ऊपर नवों भक्तियोंके वर्णनमें जिन-जिन भक्तोंके नाम उदाहरणमें दिये गये हैं, उनमें केवल एक ही भक्तिका विकास था ऐसी बात नहीं है। जिनमें जिस भावकी प्रधानता थी, उनका उसीमें नाम लिखा गया है। दुबारा नाम आनेका भी खयाल रखा गया है। वस्तुतः वे धन्य हैं जो भगवान्‌की भक्तिमें अपना मन लगाते हैं और वे कुल धन्य हैं जिनमें भगवान्‌के भक्त उत्पन्न होते हैं। भगवान् श्रीशिवजी पार्वतीसे कहते हैं—

सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीर परायन जेहि नर उपज बिनीत॥

श्रीमद्भागवतमें श्रवणादि भक्तिकी महिमामें कहा है—

शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः
स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः।
त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं
भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम्॥
(१।८।३६)

**यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं**
**यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् ।**
**लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं**
**तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥**

(२।४।१५)

'जो लोग बारंबार तुम्हारे चरित्रोंका श्रवण, गायन, वर्णन एवं स्मरण करते हैं, आनन्दमग्न होते रहते हैं, वे ही शीघ्रातिशीघ्र संसारके प्रवाहको शान्त कर देनेवाले आपके चरणकमलोंका दर्शन पाते हैं।'

जिनका कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वन्दन, श्रवण एवं पूजन लोगोंके समस्त पापोंको तुरंत धो डालता है, उन कल्याणमयी कीर्तिवाले भगवान्‌को बारंबार नमस्कार है।'

देवराज इन्द्र कहते हैं—

**यस्य भक्तिर्भगवति हरौ निःश्रेयसेश्वरे ।**
**विक्रीडतोऽमृताम्भोधौ किं क्षुद्रैः खातकोदकैः ॥**

(श्रीमद्भा० ६।१२।२२)

'परम कल्याणके स्वामी भगवान् श्रीकृष्णमें जिनका प्रेम है वे तो अमृतके समुद्रमें क्रीड़ा कर रहे हैं, उन्हें तुच्छ विषयरूप गड्ढेके जलोंसे क्या प्रयोजन है?'

भगवान् स्वयं अपनी तरन-तारिनी भक्तिकी प्रशंसा करते हुए उद्धवजीसे कहते हैं—

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥
भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयाऽऽत्मा प्रियः सताम् ।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात् ॥
धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता ।
मद्भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक् प्रपुनाति हि ॥
वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥
(श्रीमद्भा० ११ । १४ । २०–२२, २४)

'हे उद्धव ! मैं जिस प्रकार अनन्य भक्तिसे प्रसन्न होता हूँ, उस प्रकार योग, सांख्य, धर्म, स्वाध्याय, तपस्या, त्याग आदिसे प्रसन्न नहीं होता । संतोंका परमप्रिय आत्मारूप मैं एकमात्र श्रद्धा-भक्तिसे ही प्रसन्न होता हूँ । मेरी भक्ति जन्मतः चाण्डालोंको भी पवित्र कर देती है । मेरी भक्तिसे रहित जीवको सत्य और दया आदिसे युक्त धर्म तथा तपस्यायुक्त विद्या भी पूर्णतः पवित्र नहीं कर सकती ।'

'जिसकी वाणी मेरे नाम, गुण और लीलाका वर्णन करती-करती गद्गद हो जाती है, जिसका चित्त मेरे रूप, गुण, प्रभाव और लीलाओंको याद करते-करते द्रवित हो जाता है, जो बारंबार रोता रहता है और कभी-कभी हँसने लग जाता है एवं

जो लज्जा छोड़कर प्रेममें मग्न हुआ पागलकी भाँति ऊँचे स्वरसे गायन करता है और नाचने लग जाता है, ऐसा मेरा भक्त संसारको पवित्र कर देता है।'

भगवान् गीताजीमें अर्जुनसे कहते हैं—

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥

(११। ५३-५४)

'हे अर्जुन! न वेदोंसे, न तपसे, न दानसे और न यज्ञसे इस प्रकार चतुर्भुज रूपवाला मैं देखा जानेको शक्य हूँ, जैसे मेरेको तुमने देखा। परंतु हे श्रेष्ठ तपवाले अर्जुन! अनन्य भक्ति करके तो इस प्रकार चतुर्भुज रूपवाला मैं प्रत्यक्ष देखनेके लिये और तत्त्वसे जाननेके लिये तथा प्रवेश करनेके लिये अर्थात् एकीभावसे प्राप्त होनेके लिये भी शक्य हूँ।'

भक्त श्रीकाकभुशुण्डिजी कहते हैं—

राम भगति चिंतामनि सुंदर। बसइ गरुड़ जाके उर अंतर॥
परम प्रकास रूप दिन राती। नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा॥
प्रबल अबिद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई॥

खल कामादि निकट नहिं जाहीं । बसइ भगति जाके उर माहीं ॥
गरल सुधासम अरि हित होई । तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई ॥
ब्यापहिं मानस रोग न भारी । जिन्ह के बस सब जीव दुखारी ॥
राम भगति मनि उर बस जाकें । दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें ॥
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं । जे मनि लागि सुजतन कराहीं ॥

अतएव सब लोगोंको उपर्युक्त सब प्रकारसे भगवान्‌की भक्तिका आश्रय ग्रहण करके जीवन और जन्मको सफल करना चाहिये ।





पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )